ISBN: 978-93-83168-89-7

खरीफ फसलों की खेती



भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110012

ISBN: 978-93-83168-89-7

खरीफ फसलों की खेती

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली 110 012

प्रथम संस्करण: मार्च 2011
द्वितीय संस्करण: जनवरी 2025

निदेशक
सीएच. श्रीनिवास राव

संयुक्त निदेशक (अनुसंधान)
विश्वनाथन चिन्नुसामी

संकल्पना
हिंदी प्रकाशन समिति

संपादक
दिनेश कुमार
टीकम सिंह

प्रकाशन सहयोगी
डॉ. अंजलि आनंद
डॉ. अतुल कुमार
श्री बी. एस. रावत

उद्धरण: खरीफ फसलों की खेती (2025). दिनेश कुमार एवं टीकम सिंह (संपादक), भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110 012, पृष्ठ 132

ISBN: 978-93-83168-89-7

मुद्रित: 500 प्रतियां

मूल्य: 150/-

© 2025 - भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012

वेबसाइटः www.iari.res.in

प्रकाशक: निदेशक, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110 012 की ओर से प्रकाशन यूनिट द्वारा प्रकाशित व मै. एम.एस. प्रिंटर्स, सी-108/1, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली 110028, फोन: 011-45404606, मोबाइल: 7838075335 द्वारा मुद्रित।

आमुख



देश में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण अनेक प्रकार की चुनौतियां सामने आ रही हैं। खाद्य सुरक्षा को लगातार बनाए रखने के लिए प्रति इकाई क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि ही एक मात्र उपाय है जिसके द्वारा हम बढ़ती हुई जनसंख्या को खाद्य सामग्री उपलब्ध करवा सकते हैं। खरीफ मौसम में अनेक प्रकार की महत्वपूर्ण खाद्यान एवं व्यावसायिक फसलें देश के विभिन्न हिस्सों में उगाई जाती हैं। समुचित खाद्य एवं अन्य फसलीय पदार्थों की सतत आपूर्ति के लिए इन फसलों की उत्पादकता बढ़ाना परम आवश्यक है। ठोस वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं सुधरी सस्य-क्रियाओं पर आधारित फसल उत्पादन द्वारा ही खाद्य, पोषण एवं पर्यावरण सुरक्षा को प्राप्त किया जा सकता है ।

खरीफ फसलों के उत्पादन में उपयुक्त तकनीकों को अपनाकर उत्पादन-लागत में कमी कमी लाई जा सकती है जिससे किसानों की आय में वृद्धि होती है। अनुसंधान परिणामों से ज्ञात हुआ है कि अधिक उपज देने वाली किस्मों की उत्तम गुणवत्ता का स्वस्थ बीज, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, दक्ष खरपतवार प्रबंधन, समुचित जल, कीट एवं रोग प्रबंधन, उपयुक्त समय पर फसल की कटाई एवं मड़ाई तथा उपयुक्त भंडारण इत्यादि अपनाकर किसान लागत कम करके खरीफ फसलों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं।

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान का हमेशा से ध्येय रहा है कि फसल उत्पादन की नवीनतम तकनीकों का विकास कर किसानों तक प्रभावी रूप से जल्द से जल्द पहुंचाया जाए। इसी क्रम में "खरीफ फसलों की खेती" पुस्तिका संस्थान द्वारा प्रकाशित की जा रही है। आशा है यह पुस्तिका किसानों एवं कृषि प्रसार से जुड़े साथियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। प्रस्तुत पुस्तिका में खरीफ फसलों के उत्पादन की आधुनिक एवं वैज्ञानिक विधियों के विभिन्न पहलुओं को उद्धरित किया गया है।

इस पुस्तिका के प्रकाशन में सस्य विज्ञान के वैज्ञानिकों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया है, जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं । साथ ही इस प्रकाशन के संपादक डॉ. दिनेश कुमार एवं डॉ. टीकम सिंह के अथक प्रयासों के कारण किसानों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए यह उपयोगी प्रकाशन तैयार किया गया है। मैं इस प्रकाशन से संबंधित सभी व्यक्तियों का आभार प्रकट करता हूं जिन्होंने इस प्रकाशन को पूरा करने में भरपूर योगदान दिया है।

मुझे पूर्ण आशा एवं विश्वास है कि यह पुस्तिका किसानों के लिए अपने उद्देश्य में सफल रहेगी और भविष्य में भी उनका मार्गदर्शन करती रहेगी।

श्रीनिवास राव

दिनांक: 10 जनवरी 2025
स्थान: नई दिल्ली

(सीएच. श्रीनिवास राव)
निदेशक

प्राक्कथन



वर्तमान आकड़ों के अनुसार, भारत देश की वर्ष 2050 में 170 करोड़ की आबादी हो जाएगी जो कि चीन से भी अधिक होगी। इस बढ़ी आबादी का पेट भरने के लिए देश को 457 मिलियन टन खाद्यान्न (50 मिलियन टन दलहन सहित) की उपलब्धता वर्ष 2050 में करनी होगी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए फसल उत्पादकता को औसतन 4 गुना तथा जल उत्पादकता में 3 गुना बढ़ोतरी करनी होगी। साथ ही यह विशाल उत्पादन सीमित संसाधनों से उपलब्ध कराना अपने आप में एक गंभीर चुनौती होगी। अतः कृषकों, वैज्ञानिकों तथा अन्य संबंधित व्यक्तियों को निश्चित तौर पर अथक प्रयास करने होंगे जिससे कि बढ़ती हुई आबादी की खाद्यान एवं अन्य कृषि पर आधारित आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

देश में अधिकतर खाद्यान्न फसलों को खरीफ एवं रबी मौसमों में उगाया जाता है। इसी क्रम में देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन का आधे से अधिक हिस्सा खरीफ फसलों से आता है। परंतु इस फसल उत्पादन में अनेक प्रकार के प्राकृतिक एवं कृत्रिम संसाधनों का उपयोग किया जाता है। प्राकृतिक संसाधनों में भूमि, जल, वायु, खनिज पदार्थ, वन और वन्य जीव, आदि शामिल होते हैं। जबकि कृत्रिम संसाधनों अथवा निवेशों में उर्वरक, पीड़कनाशी रसायन, मशीन और जीवांश ईंधन (डीजल), इत्यादि आते हैं जिनका फसल उत्पादन में बड़े स्तर पर प्रयोग किया जाता है। कई बार इनके अविवेकपूर्ण एवं असंतुलित प्रयोग से न केवल प्राकृतिक संसाधनों की गुणवता में गिरावट आती है, बल्कि अनावश्यक रूप से उत्पादन लागत में वृद्धि और कृषि आय में कमी आती है। अतः फसल उत्पादन में ऐसी तकनीकों को अपनाने की आवश्यकता है जो प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करते हुए कृषि उत्पादन एवं आमदनी में पर्याप्त वृद्धि कर सकें।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तुत पुस्तिका "खरीफ फसलों की खेती" में खरीफ की प्रमुख फसलों के उत्पादन से संबंधित समस्त वैज्ञानिक जानकारियां उपलब्ध कराई गई हैं। इस पुस्तिका में कुल 13 प्रमुख खरीफ फसलों को शामिल किया गया है। अनाज फसलों में धान, मक्का, ज्वार एवं बाजरा, दलहनी फसलों में अरहर, मूंग, उड़द एवं लोबिया, तिलहनी फसलों में सोयाबीन, मूंगफली, तिल एवं अरंडी और रेशा फसलों में कपास को सम्मिलित किया गया है। प्रत्येक फसल की आधुनिक उत्पादन तकनीकों पर विशेष बल दिया गया है।

आशा है कि यह पुस्तिका सभी किसानों अन्य पाठक वर्ग के लिए उपयोगी होगी।

दिनांक: 7 जनवरी 2025
स्थान: नई दिल्ली

(विश्वनाथन चित्तुसामी)
संयुक्त निदेशक (अनुसंधान)

प्रस्तावना

बुलेटिन "खरीफ फसलों की खेती" का प्रथम संस्करण वर्ष 2011 में प्रकाशित हुआ था। आशा है कि यह पुस्तिका सभी किसानों और अन्य पाठक वर्ग के लिए उपयोगी सिद्ध हुई होगी। इस संस्करण को किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं, अन्य पाठक वर्ग और फसल उत्पादन में लगे अन्य सभी लोगों ने बहुत अच्छी तरह से स्वीकार किया था। किसानों द्वारा इस पुस्तिका की काफी मांग रही है। इसलिए, पाठकों को क्षेत्रीय फसलों के उत्पादन के क्षेत्र में नवीनतम तकनीकी विकास के बारे में सूचित रखने के लिए नियमित अपडेट आवश्यक होता है।

इस पुस्तिका का यह नवीन संस्करण फसल उत्पादन विज्ञान और अभ्यास के लिए एक व्यापक मार्गदर्शिका प्रदान करने के लिए रची गई है। मिट्टी और जलवायु के जटिल महत्व को समझने से लेकर बुवाई से लेकर कटाई तक की तकनीकियों में विशेषज्ञता हासिल करने तक, इस पुस्तक का उद्देश्य प्रचुर और टिकाऊ उपज पैदा करने के लिए आवश्यक ज्ञान से सुसज्जित करना है। हमारा मानना है कि फसल उत्पादन की गहरी समझ सिर्फ एक अकादमिक खोज नहीं है, बल्कि खाद्य सुरक्षा और स्वस्थ भविष्य सुनिश्चित करने के लिए एक महत्वपूर्ण कौशल है। हमें विश्वास है कि यह पुस्तक उस मिशन में एक अमूल्य संसाधन के रूप में काम करेगी।

पुस्तिका का यह संस्करण सामूहिक विशेषज्ञता और सहयोग की पराकाष्ठा है। यह भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के अनुभवी वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं के अमूल्य योगदान को दर्शाता है, जिन्होंने विभिन्न अध्याय लिखने में उदारतापूर्वक अपने ज्ञान और अनुभवों को साझा किया है। हम उनके अमूल्य योगदान के लिए उनके प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। हम उन किसानों और हितधारकों को भी धन्यवाद देते हैं जिनके सवालों, फीडबैक और क्षेत्र के अनुभवों ने इस काम को लगातार आकार और समृद्ध किया है।

हम आभारी हैं डॉ. सीएच. श्रीनिवास राव, निदेशक एवं कुलपति, डॉ. अनुपमा सिंह, डीन एवं संयुक्त निदेशक (शिक्षा), डॉ. विश्वनाथन चिन्नुसामी, संयुक्त निदेशक (अनुसंधान) और डॉ. आर.एन. पडरिया, संयुक्त निदेशक (विस्तार), आईसीएआर-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के, जिन्होंने इस कार्य को सुचारू रूप से पूरा करने के लिए अपने निरंतर मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और समर्थन को बनाए रखा।

साथ ही हम प्रकाशन में प्रमुख सहयोग के लिए संस्थान की प्रकाशन सहयोगी टीम, जिसके सदस्य डॉ. अंजलि आनंद, डॉ. अतुल कुमार एवं श्री बी. एस. रावत हैं, का भी दिल की गहराइयों से धन्यवाद देते हैं।

हम पाठकों की प्रतिक्रिया और सुझावों का स्वागत करते हैं, क्योंकि वे इस पाठ्यपुस्तक के भविष्य के संस्करणों को बेहतर बनाने के लिए अमूल्य हैं।

दिनेश कुमार
टीकम सिंह
संपादक

विषय सूची

फसल	लेखक	पेज नं.
धान	डॉ. दिनेश कुमार एवं डॉ. वाई. एस. शिवे, सस्य विज्ञान संभाग	01
मक्का	डॉ. विजय पूनिया एवं डॉ. अर्जुन सिंह मीणा, सस्य विज्ञान संभाग	16
ज्वार	डॉ. टीकम सिंह, सस्य विज्ञान संभाग	29
बाजरा	डॉ. आर. एस. बाना, सस्य विज्ञान संभाग	43
अरहर	डॉ. एस. एल. मीणा एवं डॉ. दिनेश कुमार, सस्य विज्ञान संभाग	52
मूंग	डॉ. वाई. एस. शिवे एवं डॉ. दिनेश कुमार, सस्य विज्ञान संभाग	61
उड़द	डॉ. अंचल दास, सस्य विज्ञान संभाग	70
लोबिया	डॉ. राज सिंह, सस्य विज्ञान संभाग	76
सोयाबीन	डॉ. अंचल दास, सस्य विज्ञान संभाग	85
मूंगफली	डॉ. अर्जुन सिंह मीणा एवं डॉ. विजय पूनिया, सस्य विज्ञान संभाग	90
तिल	डॉ. टी. के. दास, डॉ. ऋषि राज एवं डॉ. प्रभु गोविंदासामी सस्य विज्ञान संभाग	98
अरंडी	डॉ. कपिला शेखावत, डॉ. संजय सिंह राठोड़ एवं डॉ. विशाल त्यागी सस्य विज्ञान संभाग	108
कपास	डॉ. रमनजीत कौर एवं डॉ. सीमा सेपट, सस्य विज्ञान संभाग	118



धान

खाद्य सुरक्षा एवं क्षेत्र के दृष्टिकोण से भारत में धान सबसे महत्वपूर्ण फसल है। इसकी खेती बहुत ही व्यापक स्तर पर की जा रही है। विश्व का 90% धान एशिया महाद्वीप में उगाया और उपयोग में लाया जाता है। एशिया के प्रमुख धान उत्पादक देशों में भारत, चीन, इंडोनेशिया, वियतनाम, थाईलैंड, बंग्लादेश, फिलिपींस और म्यांमार, आदि हैं। भारत देश में लगभग 46.5 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पर धान की खेती की जा रही है, जबकि चीन में लगभग 30 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पर धान की खेती की जा रही है। हालांकि भारत में चीन की तुलना में काफी अधिक क्षेत्रफल है परंतु चीन धान के उत्पादन में अग्रणी है। इसका कारण है चीन में धान की प्रति इकाई क्षेत्र भारत की तुलना में कहीं अधिक उत्पादकता। विडंबना यह भी है भारत में धान की उत्पादकता विश्व की औसत वार्षिक उत्पादकता से काफी कम है। अतः धान उत्पादन को लाभकारी बनाने के लिए नई-नई तकनीकों को अपनाने की आवश्यकता है जिससे की फसलोत्पादन लागत में कमी लाई जा सके और उत्पादकता बढ़ाई जा सके। इस दिशा में अधिक से अधिक किसानों को नवीनतम धान उत्पादन तकनीक को अपनाना आवश्यक होगा।

जलवायु

धान मूल रूप से एक उष्णकटिबंधीय (ट्रॉपिकल) क्षेत्रों की फसल हैं, परंतु इसे उपोष्णकटिबंधीय (सब ट्रॉपिकल) और समशीतोष्ण जलवायु के अंतर्गत आर्द्र से उप-आर्द्र क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जाता है। धान की खेती विश्व में 39^0 दक्षिणी अक्षांश (ऑस्ट्रेलिया) से 45^0 उत्तरी अक्षांश (जापान) और 50^0 उत्तरी अक्षांश (चीन) तक फैली हुई है। विश्व के व्यापक धान उत्पादक क्षेत्र भूमध्य रेखा के 50^0 उत्तरी अक्षांश के अंदर हैं। भारत के लगभग प्रत्येक प्रांत में धान



की खेती की जाती है। इन प्रांतों में जलवायु की अनेक भिन्नताएं पाई जाती हैं। भारत में धान की खेती 8 से 35° उत्तरी अक्षांश तक की जाती है। धान को कुट्टानड़ (केरल) में समुद्र तल के नीचे से लेकर कश्मीर में 2500 मीटर की ऊंचाई तक उगाया जाता है। इसकी खेती 20 से 40° सेंटीग्रेड तापक्रम के मध्य की जाती है परंतु इसकी अच्छी वृद्धि एवं उपज के लिए औसत मासिक तापक्रम 24° सेंटीग्रेड उत्तम रहता है। धान फसल के लिए उपयुक्त तापक्रम सारणी-1 में दिया गया है:

सारणी 1. धान फसल की विभिन्न वृद्धि अवस्थाओं के लिए अनुकूल तापक्रम

वृद्धि अवस्था	उपयुक्त अथवा अनुकूल तापक्रम (° सेंटीग्रेड)
अंकुरण	20 – 35
पौध उद्भव एवं स्थापना	25 – 30
जड़न (रूटिंग)	25 – 28
पत्तियों का विस्तार या फैलाव	31
ब्यांत (टिलरिंग) अवस्था	25 – 31
पुष्पगुच्छ की प्रारंभिक बढ़वार (पैनिकल प्राइमोर्डिया)	25 – 30
पुष्पगुच्छ विभेदन (पैनिकल डिफरेंसिएशन)	25 - 28
परागोध्भव (एनथेसिस)	30 – 33
पकना (परिपक्वता या राइपनिंग)	20 – 25

धान की खेती स्वाभाविक रूप से उन क्षेत्रों में की जाती है जहां पर वार्षिक वर्षा 1000 मि.मि. से अधिक होती है या फिर वहां सिंचाई के साधन उपलब्ध होते हैं। धान की पानी की अवस्था उसके उगाए गए मौसम, उगाने की विधि, मृदा, किस्म, तापक्रम, सौर्य विकिरण और फसल प्रबंधन, आदि से प्रभावित होती है।

फसल प्रणाली

लगातार एक प्रकार की फसलों को उगाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति में गिरावट आ जाती है। साथ ही कीड़े-मकोडों, बीमारियों और खरपतवारों का नियंत्रण भी एक गंभीर समस्या बन जाती है। उदाहरण के लिए लगातार धान-गेहूं फसल-चक्र अपनाने से गेहुंसा (गुल्ली डंडा) खरपतवार की बढ़वार अधिक होती है जो गेहूं की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। धान के कुछ कीट गेहूं की फसल को नुकसान पहुंचा सकते हैं। अतः ऐसी परिस्थिति में इस फसल चक्र धान-गेहूं का विविधीकरण करके उपरोक्त समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। धान-गेहूं फसलचक्र के स्थान पर धान-आलू, धान-बरसीम, धान-सूरजमुखी अथवा धान-गेहूं-मूंग, आदि फसलचक्रों को अपनाया जा सकता है। यदि संभव हो तो फसलचक्र में हरी खाद को शामिल किया जा सकता है। हरी खाद लगाने से भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है और अगली फसल के उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी होती है। यदि हरी खाद का फसल-चक्र में समावेश संभव न हो तो युग्म-उद्देशीय दलहनी फसलों जैसे मूंग, लोबिया, उड़द, मटर और ग्वार आदि को उगाया जा सकता है। उपरोक्त फसलों से फलियों को अलग करने के बाद इनके अवशेषों को मिट्टी में मिलाया जा सकता है। इस प्रकार इन युग्म-उद्देशीय दलहनी फसलों को फसल-चक्र में शामिल करने से किसानों की आमदनी और मिट्टी की उर्वरा शक्ति में बढ़ोत्तरी होगी। उत्तरी भारत की गहरी मृदाओं में धान काटने के बाद आलू, बरसीम, चना, मसूर, सरसों, लाही



अथवा गन्ना आदि को उगाया जाता है। उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में सिंचाई, बाजार आदि की सुविधा उपलब्ध होने पर निम्नलिखित फसल चक्र अपनाए जा सकते हैं:

धान-गेहूं	(एक वर्ष)
धान-बरसीम	(एक वर्ष)
धान-गेहूं-लोबिया/उड़द/मूंग	(एक वर्ष)
धान-आलू-मक्का	(एक वर्ष)
धान-लाही-गेहूं	(एक वर्ष)
धान-सब्जी मटर-गेहूं-मूंग	(एक वर्ष)
धान-लाही-गेहूं-मूंग	(एक वर्ष)
धान-गेहूं-मूंग-मक्का-सरसों-उर्द	(दो वर्ष)
धान-आलू-मूंग-अरहर-गेहूं-चरी	(दो वर्ष)
धान-गन्ना-गन्ना पेड़ी-गेहूं-मूंग	(तीन वर्ष)

उपयुक्त मृदा

धान की खेती के लिए अधिक जलधारण क्षमता वाली मृदाएं जैसे - चिकनी, मटियार या मटियार-दोमट मृदा प्रायः उपयुक्त होती हैं। मृदा का पीएच मान प्रायः 5.5 – 6.5 अधिक उपयुक्त होता है। यद्यपि धान की खेती 4.0 से 8.0 अथवा इससे भी अधिक पीएच मान वाली मृदाओं में की जा सकती है, परंतु सबसे अधिक उपयुक्त मृदा पी एच 6.5 वाली मानी गई है। क्षारीय और लवणीय मृदाओं में मृदा सुधारकों का समुचित उपयोग करके धान को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। धान उगाने की विभिन्न विधियों में एरोबिक (वायवीय) धान पद्धति, परंपरागत रोपाई विधि एवं धान सघनता पद्धति शामिल हैं।

उपयुक्त किस्में

देश के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित धान की प्रमुख किस्में निम्न हैं:

अगेती किस्में (100-120): इनमें मुख्य रूप से पंत धान 26, राजेन्द्र सरस्वती, राजेन्द्र नीलम, आई.जी.के.वी.आर. 1, इंदिरा एरोबिक 1, जे.आर. 281, सी.आर. धान 203, पी.आर. 121, पी.आर. 128, एम.टी.यू. 1064, पी.एन.आर. 381, पी.एन.आर. 162, नरेन्द्र धान 86, गोविन्द, साकेत 4, नरेन्द्र धान 97, सहभागी धान एवं संपदा, आदि प्रमुख हैं। इनकी औसत पैदावार लगभग 4.5 - 5.5 टन/हैक्टेयर तक होती है।

मध्यम अवधि की किस्में (120-130 दिन): इनमें मुख्य किस्में स्वर्णा श्रेया, सबौर संपन्न धान, जे.आर. 206, सी.आर. धान 310, पंत धान 24, सरजू 52, एन.डी.आर. 359, पंत धान 10, पंत धान 12, आई आर. 64, कोटंडोरा सनालु, गोंतरा बिधान 1, खांडागिरी, महामाया एवं नवीन, आदि प्रमुख हैं। इनकी औसत उपज लगभग 5.5-6.0 टन/हैक्टेयर होती है।

लंबी अवधि वाली किस्में (130-150 अथवा अधिक दिन): इस वर्ग में एन.डी.आर. 9930111, सी.आर. धान 802, बी.पी.टी. 5204, पूसा 44, पी.आर. 106, मालवीय 36, महसूरी, ललाट, नरेंद्र 8002, पूजा, प्रतीक्षा, रानी धान, रंजीत,

सांबा महसूरी एवं स्वर्णा सब-1, आदि प्रमुख किस्में हैं। इनकी औसत उपज लगभग 6.0-7.0 टन/हैक्टेयर है।

संकर किस्में: इनमें प्रमुख रूप से एन.पी.एच. 8899, जी.के. 5022, के.पी.एच 272, के.पी.एच. 467, सी.आर.एच.आर. 105, सी.आर.एच.आर.106, सी.आर.एच.आर. 32, सी.आर.एच.आर. 34, सी.आर.एच.आर. 100, पंत संकर धान 1, के.आर.एच. 2, पी.एस.डी. 3, जी.के. 5003, पी.ए. 6444, पी.ए. 6201, पी.ए. 6219, डी.आर.आ.र.एच. 3, इंदिरा सोना, सुरूचि, नरेन्द्र संकर धान 2, प्रो.एग्रो. 6201, पी.एच.बी. 71, एच.आर.आई. 120, आर.एच. 204 एवं पूसा राईस हाइब्रिड 10 (पी.आर.एच. 10), आदि हैं।

बासमती किस्में: बासमती 370, बासमती 386, टाइप 3, कस्तूरी, पूसा बासमती 1, पूसा बासमती 1509, पूसा बासमती 1609, पूसा बासमती 1121, हरियाणा बासमती 1, माही सुगंध, इम्प्रूव्ड पूसा बासमती 1 (पूसा 1460), वल्लभ बासमती 22, वल्लभ बासमती 23, वल्लभ बासमती 24, बासमती सी.एस.आर. 30, पूसा बासमती 1718, पूसा बासमती 1728, पूसा बासमती 1637, पूसा बासमती 1692, पूसा बासमती 1886, पूसा बासमती 1885, एवं पूसा बासमती 1847, आदि।

सुगन्धित किस्में: पूसा सुगंध 5, पूसा 1592 एवं पूसा 1612, आदि।

बीज गुणवत्ता

धान उत्पादन में उन्नत प्रजातियों के बीज का योगदान काफी महत्वपूर्ण होता है। अच्छे बीज के अभाव में फसलोत्पादन के अन्य साधनों का उपयोग विफल हो जाता है। सर्वप्रथम, ऐसी प्रजातियों के बीज का उपयोग किया जाए जो किसी क्षेत्र-विशेष एवं मृदा-दशा के लिए उपयुक्त हों। संकर किस्मों का बीज प्रति वर्ष बदलने की आवश्यकता होती है। अतः संकर बीज नया तैयार किया हुआ ही प्रयोग में लाना चाहिए। किसी किस्म के सही नाम तथा गुणों की जानकारी के लिए आवश्यक है कि बीज किसी विश्वसनीय विक्रेता, सरकारी संस्थान, कृषि विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय अथवा प्रादेशिक बीज निगमों से प्रमाणित बीज ही खरीदा जाए। बेहतर यही होगा कि बुवाई से पूर्व बीज की अंकुरण क्षमता की जांच कर ली जाए। बुवाई से पूर्व बीज का उपचार परम आवश्यक होता है। आमतौर पर प्रमाणित बीज को उपचारित करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह पहले से ही उपचारित होता है। परंतु यदि पिछली फसल का बीज उपयोग में लाया जा रहा है तो उसका उपचार अति आवश्यक होता है। धान की खेती के लिए अपने क्षेत्र विशेष के लिए उन्नत किस्मों का ही प्रयोग करना चाहिए जिससे कि अधिक से अधिक पैदावार ली जा सके।

बीज शोधन

चुनी हुई किस्मों का बीज किसी मान्यता प्राप्त संस्था से ही लेना चाहिए। एक बार प्रमाणित बीज लेने के बाद उसे तीन साल तक बदलने की आवश्यकता नहीं होती है। अगर किसान भाई अपना बीज प्रयोग कर रहे हैं तो इस बात का विशेष ध्यान रखें कि बीज में अंकुरण का प्रतिशत 80-90 होना चाहिए। बुवाई से पहले स्वस्थ बीजों की छंटनी कर लेनी चाहिए। इसके लिए 10 प्रतिशत नमक के घोल का प्रयोग करते हैं। नमक का घोल बनाने के लिए 2.0 कि.ग्रा. सामान्य नमक 20 लिटर पानी में घोल लें और इस घोल में 3.0 कि.ग्रा. बीज डालकर अच्छी तरह हिलाएं, इससे स्वस्थ एवं भारी बीज नीचे बैठ जाएगा और थोथे एवं हल्के बीज ऊपर तैरने लगेंगे। इस तरह साफ व स्वस्थ छांटा हुआ 20 कि.ग्रा. बीज महीन दाने वाली किस्मों में तथा 25 कि.ग्रा. बीज मोटे दानों की किस्मों में एक हैक्टेयर की रोपाई के लिए पौध तैयार करने के लिए पर्याप्त होता है।



कवक एवं जीवाणुनाशी दवाओं के घोल से बीज का उपचार करने से बीज के द्वारा फैलने वाली कवक एवं जीवाणु-जनित बीमारियों का नियंत्रण हो जाता है। इसके लिए 25 ग्रा. बाविस्टीन और 2.5 ग्रा. स्ट्रेप्टोसाईक्लीन 25 लिटर पानी में घोल लें। अब 20 कि.ग्रा. छांटे हुए बीज को 25 लिटर उपरोक्त घोल में 24 घंटे के लिए रखें। इसके उपरांत इस बीज को घोल से बाहर निकालकर किसी छायादार स्थान पर टाट के बोरे अथवा साफ़ कपड़े पर समान रूप से फैला दें। साथ ही बोरे अथवा साफ़ कपड़े से इसे ढक दें। बीज को गीला रखने के लिए दिन में 2 – 3 बार हजारे से हल्का पानी छिडकें। 24-36 घंटे बाद इन बीजों में अंकुरण हो जाएगा और इस अवस्था पर यह पौधशाला (नर्सरी) में बुवाई उपयुक्त हो जाता है। बीज उपचार से जड़ गबन (फूट राट), झोंका (ब्लास्ट) एवं पत्ती झुलसा रोग (बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट) आदि बीमारियों के नियंत्रण में सहायता मिलती है।

धान फसल की स्थापना

सीधी बुवाई

यदि सिंचित परिस्थिति में एरोबिक (वायवीय) धान पद्धति (सीधी बुवाई) से धान को उगाया जा रहा है तो सबसे पहला कार्य है पलेवा। पलेवा करने से खेत की तैयारी में आसानी होती है और साथ ही धान का अंकुरण भी अच्छा होता है। पहली जुताई गहरी की जाए जिसके लिए मिट्टी-पलट हल अथवा किसी अन्य उपयुक्त यंत्र का प्रयोग किया जा सकता है। इसके बाद 2-3 जुताई हैरो, देसी हल अथवा कल्टीवेटर से करने के बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। इसके बाद यह खेत बुवाई योग्य हो जाता है। पंक्तियों में देसी हल अथवा सीड ड्रिल से बुवाई करने पर 30-40 कि.ग्रा./हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20-25 सें.मी. अधिक उपयुक्त पाई गई है। बीज की उचित गहराई: 2-3 सें.मी. है। सही जमाव तथा चिड़ियों से बीज के नुकसान को रोकने के लिए बीज को मिटटी से ढक देना चाहिए। निचली एवं कम रेतीली भूमियों में बुवाई के बाद पाटा लगाने की आवश्यकता नहीं होती है। सही अंकुरण के लिए बुवाई के समय पर्याप्त नमी होना चाहिए। पलवार का प्रयोग अधिक समय तक भूमि में नमी बनाए रखता है जिससे अंकुरण क्षमता बढ़ने के साथ–साथ खरपतवारों का भी नियंत्रण होता है। यदि खेत में नमी पर्याप्त न हो तो फसल को पलेवा करने के बाद बोया जाए अथवा बुवाई के तुरंत बाद एक हल्का पानी लगाना चाहिए। उत्तरी भारत में इसकी बुवाई का उपयुक्त समय जून का महीना है।

रोपाई के लिए नर्सरी में पौध की तैयारी

नर्सरी (पौधशाला) ऐसी भूमि में तैयार करनी चाहिए जो उपजाऊ, अच्छे जल निकास वाली व जल स्रोत के पास हो। एक हैक्टेयर क्षेत्रफल में धान की रोपाई के लिए 800 - 1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में पौध तैयार करना पर्याप्त होता है। धान की नर्सरी की बुवाई का सही समय वैसे तो विभिन्न किस्मों पर निर्भर करता है, लेकिन 15 मई से 20 जून तक का समय बुवाई के लिए उपयुक्त पाया गया है। धान की नर्सरी भीगी विधि से पौध तैयार करने का तरीका उत्तरी भारत में अधिक प्रचलित है। इसके लिए खेत में पानी भरकर 2-3 बार जुताई करते हैं ताकि मिट्टी लेहयुक्त हो जाए तथा खरपतवार नष्ट हो जाएं। आखिरी जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें। जब मिट्टी की सतह पर पानी न रहे तो खेत को 1.25 से 1.50 मीटर चौड़ी तथा सुविधाजनक लंबी क्यारियों में बांट लें ताकि बुवाई, निराई एवं सिंचाई की विभिन्न सस्य क्रियाएं आसानी से की जा सकें। क्यारियां बनाने के बाद पौधशाला में 5 सें.मी. ऊंचाई तक पानी भर

दें और अंकुरित बीजों को समान रूप से क्यारियों में बिखेर दें। पौधशाला के 800 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में लगभग 600-800 कि. ग्रा. गोबर की गली-सड़ी खाद, 8-12 कि.ग्रा. यूरिया, 15-20 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट, 5-6 कि.ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश एवं 2-2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह से मिलाना चाहिए।

धान की पौधशाला में खरपतवारों, कीटों एवं रोगों से हानि पहुंच सकती है। साथ ही कई बार कुछ पोषक तत्वों की कमी के कारण पौध की कमजोर वृद्धि हो सकती है। उपयुक्त सिंचाई व्यवस्था भी पौध की अच्छी बढ़वार में मदद करती है। यदि रोपाई में धान की कमजोर एवं रोगग्रस्त पौध की रोपाई की जाती है तो मुख्य खेत से धान की अच्छी पैदावार नहीं मिलती है। धान पौधशाला में खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के 10-12 दिन बाद निराई अवश्य करें। यदि पौधशाला में अधिक खरपतवार होने की संभावना हो तो ब्यूटाक्लोर 50 ई सी शाकनाशी की 120 मि.लि. मात्रा 60 लिटर पानी में घोलकर 1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में बुवाई के 4-5 दिन बाद छिड़क दें। यदि पौधशाला में कीटों का प्रकोप दिखाई दे तो रोगर 2 मि.लि. दवा प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़कना चाहिए। पौधशाला के 800-1000 वर्ग मीटर क्षेत्रफल के लिए 60-65 लिटर घोल पर्याप्त होता है। धान की नर्सरी में कभी-कभी लौह (आयरन) तत्व की कमी पाई जाती है खासकर ऊपरी भूमियों में जिनमे पानी लंबे समय तक रुक नहीं पाता है। लौह तत्व की कमी से पहले ऊपरी पत्तियां पीली हो जाती है। यदि यह कमी बनी रहती है तो सारी पत्तियां पीली होकर फिर सफ़ेद रंग की हो जाती हैं **(चित्र 1)**। इसके बाद नर्सरी में पौध भूरे रंग की होकर सूख जाती है। इसके उपचार के लिए सबसे पहले नर्सरी में हल्का पानी खड़ा रखें और आयरन सल्फ़ेट का छिड़काव करें। आयरन सल्फ़ेट (0.5%) तथा चूने (0.25%) के घोल को बराबर-बराबर मात्रा में मिलाकर छिड़क दें। नर्सरी के 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र के लिए 60-65 लिटर मिश्रित घोल पर्याप्त होगा।



चित्र 1. धान की पौधशाला में लौह तत्व की कमी के लक्षण

रोपाई

फसल उगाने की धान सघनता एवं परंपरागत रोपाई पद्धतियों में खेत की तैयारी लगभग एक सी ही होती है। सबसे पहले खेत की मेड़बंदी मजबूती से कर लें। साथ ही यदि खेत असमतल हो तो लेज़र लेवलर अथवा किसी अन्य



उपयुक्त यंत्र से समतल कर लें। अब खेत में 6 – 8 सें.मी. पानी खड़ा करके 2 – 3 बार मिट्टी-पलट हल, देसी हल, हैरो, कल्टीवेटर या पड्लर से जुताई करें। इसके बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें। यदि खेत में ज़ायद अथवा ग्रीष्म-कालीन फसल ली है और उसमें काफी खरपतवार हों तो सिंह पटेला का प्रयोग करके इन खरपतवारों को खेत से बाहर निकाल दें। यह सिंह पटेला खेत तो समतल करने का कार्य भी साथ-साथ कर देता है। जब खेत में अंतिम जुताई (गारा/ लेव बनाना) कर रहे हों तभी उर्वरकों की संस्तुत मात्रा का भी प्रयोग करें। अब यह खेत रोपाई योग्य हो जाता है। सामान्यतः जब पौध 20-25 दिन पुरानी हो जाए तथा उसमें 4-5 पत्तियां निकल जाएं तो यह रोपाई के लिए उपयुक्त होती है। पौध उखाड़ने के एक दिन पहले नर्सरी में अच्छी तरह से पानी भर देना चाहिए, जिससे पौध को आसानी से उखाड़ा जा सके तथा साथ ही साथ पौध की जड़ों को भी कम नुकसान हो। पौधों की जड़ों को धोते समय नुकसान न होने दें तथा पौधों को काफी नीचे से पकड़े। पौध की रोपाई पंक्तियों में करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखनी चाहिए। एक स्थान पर 2 से 3 पौध ही लगाएं। इस प्रकार एक वर्गमीटर में लगभग 50 पौधे होने चाहिए। अधिक उपज एवं भूमि की उर्वरता शक्ति बनाये रखने के लिए हरी खाद या गोबर या कम्पोस्ट का प्रयोग करना चाहिए। हरी खाद हेतु सनई या ढ़ैंचे का प्रयोग किया गया हो तो नाइट्रोजन की मात्रा कम की जा सकती है, क्योंकि सनई या ढ़ैंचे से लगभग 50-60 कि.ग्रा. नाइद्रोजन प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है।

धान की फसल को धान सघनता पद्धति से भी उगाया जाता है। धान की एस.आर.आई. (धान सघनता) पद्धति को अपनाने से न सिर्फ पानी की बचत होती है बल्कि उपज भी अधिक मिलती है। परंपरागत धान की खेती की तुलना में धान उगाने की इस विकसित तकनीक के पाँच प्रमुख अवयव हैं: (1) धान के 10-12 दिन के नवजात पौधों का रोपण जिसमें एक स्थान पर मात्र एक ही पौधा रोपित किया जाता है (2) अधिक दूरी पर पौधों का वर्गाकार ज्यामिती में रोपण (3) सीमित सिंचाई कर पानी की बचत (4) बार-बार खेत में खरपतवार नियंत्रण हेतु कृषि क्रियाओं द्वारा वायु के आवागमन को बरकरार रखना एवं खरपतवारों को खेत में गाड़ना, एवं (5) अधिक से अधिक जैविक खादों का उपयोग करना। इस पद्धति में रोपाई की दूरी 25 सें.मी. x 25 सें.मी. अच्छी रहती है। सिंचाई हमेशा अत्यंत हल्की करते हैं और खेत को लगातार जलमग्न रखने की आवश्यकता नहीं होती है। प्रारंभ में सिंचाई भूमि में नमी के स्तर को लगभग संतृप्त बनाये रखने तक की जाती है। भूमि के जलमग्न न होने से जड़ें स्वस्थ तथा गहराई तक चारो ओर बढती हैं। पौधों में ज्यादा दूरी होने से जड़ों का प्रसार अधिक होता है जिससे पौधों की वृद्धि भी अधिक होती है। बालियां निकलना शुरू होने से फसल के पकने तक खेत में 1 -2 सें.मी. पानी खड़ा रखते हैं। खेत में पानी खड़ा न रहने से इस विधि में खरपतवारों की समस्या अधिक होती है। कोनोवीडर द्वारा रोपाई के 25 तथा 45 दिन बाद खरपतवारों को भूमि में पलटकर मिला दिया जाता है जोकि हरी खाद का काम करते हैं और खेत में जैविक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ाते हैं।

एक तरफ तो धान की रोपाई में मानवीय श्रम की अधिक आवश्यकता होती है और दूसरी तरफ श्रमिकों की समय पर उपलब्धता में लगातार कमी आती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार धान की रोपाई में प्रति हैक्टेयर 34 – 36 मानव-दिवसों की आवश्यकता होती है जोकि बहुत अधिक श्रम है। अतः धान की रोपाई मशीन (धान रोपाई यंत्र) से करके धन, श्रम एवं समय की बचत की जा सकती है (चित्र 2)। इसके लिए विशेष प्रकार की चटाईनुमा नर्सरी तैयार करके धान रोपाई यंत्र (पैडी ट्रांस्प्लान्टर) रोपाई की जा सकती है ।



चित्र 2. धान रोपाई की मशीन

पछेती रोपाई (अधिक पौध उम्र) में सावधानियां

कुछ विशेष कारणों से कई बार धान की रोपाई देर से की जाती है। वर्षा-आधारित क्षेत्रों में कई बार वर्षा का आगमन देर से होता है अथवा वर्षा बहुत अधिक हो जाती है और ऐसी दशा में जलभराव के कारण समय पर रोपाई नहीं हो पाती है। देर से रोपाई के कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं। परंतु वर्षा समय पर होने की आशा में किसान धान की पौध (नर्सरी) की बुवाई कर देते हैं। जब रोपाई की उपयुक्त दशा आती है तब तक धान की पौध अधिक उम्र (पुरानी) की हो जाती है। साथ ही ऐसे समय पर धान की नई पौध तैयार करने का समय नहीं मिल पाता है। अतः



मजबूरन किसानों को रोपाई के लिए धान की पुरानी पौध का प्रयोग करना पड़ सकता है। उपरोक्त दशा में यदि कुछ विशेष सस्य-क्रियाओं को अपनाया जाए तो ऐसी पुरानी पौध के प्रयोग से भी धान की अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

आमतौर पर किसानों को सलाह दी जाती है कि धान की पौध की रोपाई के लिए उपयुक्त उम्र 20-25 दिन (जल्दी पकने वाली/ मध्यम-अवधि में पकने वाली किस्में) अथवा 25-30 दिन (दीर्घावधि में पकने वाली किस्में) उपयुक्त होती है। परंतु जब मानसून देर से आता है तब पौध की उम्र (35 -50 दिन) तक हो सकती है। कई बार समय पर उर्वरक अथवा कृषि यंत्र न मिलने के कारण भी पौध की समय पर रोपाई करना संभव नहीं हो पाता है। यानि एक तो धान की पौध पुरानी हो चुकी है और उसकी रोपाई भी देर से की जा रही है, ऐसी परिस्थिति में किसानों को निम्नलिखित सलाह दी जा रही है ताकि धान से अच्छी उपज ली जा सके:

- रोपाई की दूरी घटा देना चाहिए जिससे प्रति इकाई क्षेत्र पौधों की संख्या बढ़ जाती है। आमतौर पर 20 से.मी. x 10 से.मी. दूरी पर धान को रोपा जाता है जिससे प्रति वर्गमीटर 50 पौधे आते हैं। परंतु अधिक उम्र के पौधों को 15 से.मी. x 10 से.मी. दूरी पर रोपा जाना चाहिए जिससे प्रति वर्गमीटर 60 पौधे आ जाते हैं।
- एक स्थान पर 3 – 5 पौधों की रोपाई करें।
- पौधों की लंबाई को कम कर लेना चाहिए। पौध की चोटी से कटाई करके उसे छोटा कर लेना चाहिए। साथ में साइड में निकली हुई पत्तियों को भी बीच से काट देना चाहिए। यदि पौध पर अधिक पत्तियां होंगी तो वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाले पानी की अधिक क्षति होगी और पौध को स्थापित होने में अधिक समय लगेगा अथवा कई बार पौध सूख भी सकती है, क्योंकि जड़ों द्वारा आरंभ में पानी का बहुत कम अवशोषण होता है अतः ऐसे समय पर यदि पत्तियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन होता है तो पौधे सूख जाते हैं।
- पछेती धान में उर्वरकों का प्रयोग बढ़ा देना चाहिए। आमतौर पर उर्वरकों की संस्तुत मात्रा से 1.25 से 1.50 गुना अधिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- अपनी पछेती फसल की लगातार देखभाल करते रहें। बाकी सस्य-क्रियाएं जैसे खरपतवार प्रबंधन, कीड़े-मकोड़ों एवं रोगों का प्रबंधन समय से रोपाई किए गए धान की भांति करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग भूमि परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। धान की बौनी किस्मों के लिए 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$), 40 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिए। अधिक पैदावार देने वाली बासमती किस्मों के लिए 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$), 40-50 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) एवं 20-25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर देना चाहिए। जबकि संकर धान के लिए 130-140 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60-70 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$), 50-60 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) एवं 25-30 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट हैप्टाहाईड्रेट प्रति हैक्टेयर देना चाहिए। यूरिया की पहली तिहाई मात्रा का प्रयोग रोपाई के 5-8 दिन बाद करें जब पौधे अच्छी तरह से जड़ पकड़ लें। दूसरी एक तिहाई यूरिया की मात्रा कल्ले फूटते समय (रोपाई के 25-30 दिन बाद) तथा शेष एक तिहाई हिस्सा फूल आने से पहले (रोपाई के 50-60 दिन बाद) खड़ी फसल में प्रयोग करें। फॉस्फोरस की पूरी मात्रा सिंगल सुपर फॉस्फेट या डाई अमोनियम फॉस्फेट (डी.ए.पी.)



के द्वारा, पोटाश की भी पूरी मात्रा म्यूरेट ऑफ पोटाश के माध्यम से एवं जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा धान की रोपाई करने से पहले अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला देनी चाहिए। यदि पोषक तत्वों की आपूर्ति एनपीके उर्वरकों से की जा रही है तो उर्वरक की आवश्यक मात्रा का प्रयोग रोपाई के समय पर किया जाए तथा नाइट्रोजन की शेष मात्रा की आपूर्ति यूरिया उर्वरक से करना चाहिए। यदि किसी कारणवश पौध रोपते समय जिंक सल्फेट खाद न डाला गया हो तो इसका छिड़काव भी किया जा सकता है। इसके लिए 15-20 दिनों के अंतराल पर 3 छिड़काव 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने के घोल के साथ करने चाहिए।

जल प्रबंधन

अन्य फसलों की तुलना में धान को अधिक पानी की आवश्यकता होती है। परंपरागत विधि से धान उत्पादन में 1 कि.ग्रा. धान पैदा करने हेतु लगभग 3000 – 5000 लिटर पानी की आवश्यकता होती है। धान उत्पादन में जल की यह आवश्यकता मुख्यतः खेत की तैयारी एवं पौध लगाना, वाष्पोत्सर्जन एवं भूमिगत रिसाव और इसके गहराई में चले जाने में होती है। प्रायः यह देखा गया है कि किसान धान की खेती में कहीं अधिक जल का प्रयोग करते हैं क्योंकि परंपरागत सिंचाई विधियों की जल दक्षता मात्र 30 - 40 प्रतिशत ही होती है। पानी की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए विश्व भर में खेत स्तर पर धान उगाने हेतु नवीनतम तकनीकों को अपनाया जा रहा है, और इन अधिकांश तकनीकों से परंपरागत विधियों की तुलना में पानी की काफी बचत होती है क्योंकि ये विधियां पानी की लगातार हो रही कमी से प्रेरित होती हैं। अभी तक किसानों की यह धारणा है कि धान से अधिक उत्पादन लेने के लिए खेतों में जलमग्नता रहनी चाहिए, परंतु अनुसंधान से यह साबित हो गया है कि धान को इतने अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती है। हां यह जरूर है कि धान में लगातार पानी भरे रहने से खरपतवारों से होने वाले नुकसान में कमी आ जाती है। यदि खरपतवारों को उपुक्त विधियों से खत्म कर दिया जाए तो लगातार जलमग्न अवस्था धान के लिए कोई जरूरी नहीं होती। आज जल की मांग एवं उपलब्धता को देखते हुए ऐसी कई नई तकनीकों से जैसे – लेजर लेवलिंग, धान की ऐरोबिक (वायवीय) विधि, खेत में पानी सोखने के 2 – 3 दिन बाद सिंचाई एवं धान सघनता विधि, (एस.आर.आई.) आदि को अपनाकर जल की आवश्यकता में कमी के साथ-साथ फसल उत्पादकता को भी बढ़ाया जा सकता है।

खेत को समतल एवं उपयुक्त ढाल पर रखकर पानी को समान रूप से पूरे खेत में दिया जा सकता है। इससे पानी की खपत में कमी आती है। आजकल खेत समतलीकरण आधुनिकतम तकनीक लेजर लेवलिंग से किया जाए तो खेत को न सिर्फ भलीभांति समतल किया जा सकता है बल्कि एक मनचाहा ढाल भी प्रदान किया जा सकता है। लेजर विधि द्वारा समतल किए गए खेत में अन्य विधियों द्वारा किए गए खेतों की तुलना में पैदावार अधिक होती है तथा जल उत्पादकता में भी वृद्धि पाई होती है। प्रायः किसान धान की रोपाई से लेकर इसकी कटाई तक खेत में लगातार जल भरकर रखते हैं, परंतु इससे जल की मांग भी बढ़ जाती है और दूसरे हानिकारक प्रभाव भी आते हैं। अनुसंधान के परिणामों से ज्ञात हुआ है कि एक सिंचाई से दूसरी सिंचाई में यदि अंतराल यानि खेत का पानी सूखने के 2 – 3 दिन बाद दूसरी सिंचाई करें। इस पद्धति से न सिर्फ पानी की आवश्यकता में कमी आती है बल्कि उपज में बढ़ोत्तरी होती है। धान उगाने की नई तकनीकों में आजकल कुछ जगहों पर टपकदार सिंचाई के उपयोग पर अनुसंधान किए जा रहे हैं। यह सर्वमान्य है कि टपकदार सिंचाई से जल की बचत, जल उपयोग क्षमता एवं पोषक तत्वों का प्रयोग भलीभाँति किया जा सकता है। कुछ अनुसंधानो के परिणामों ने ज्ञात हुआ है कि धान में जल एवं पोषक तत्वों की मांग में कमी

आ जाती है परंतु परंपरागत धान उगाने की विधि से तुलना करें तो निश्चित तौर पर टपकदार सिंचाई पद्धति से पानी की मांग में काफी कमी आती है एवं पोषक तत्वों का समुचित उपयोग होता है।

जिन क्षेत्रों में पानी की कमी है और धान की फसल लेना आवश्यक है वहाँ पर खेत को बिना पडल किए (बिना गारा/ लेव बनाए) धान को सीधे बो दिया जाता है और खेत में पानी कभी भी भरा नहीं रहता, उसे ऐरोबिक धान कहा जाता है। इस तरह जो पानी तकरीबन 20 – 30 सें.मी. पडलिंग करने के लिए आवश्यक होता है उसकी सीधे-सीधे बचत हो जाती है। इसके साथ ही पौध तैयार करने में जो पानी खर्च होता है उसकी भी बचत होती है। सीधे बुवाई करने से समय की बचत होती है और खेत समय पर अगली फसल के लिए खाली हो जाता है। परंतु इस विधि से धान उगाने पर खेतों में खरपतवार एवं सूत्रक्रमियों की समस्याएं आती हैं। अतः खरपतवारों को नष्ट करने के लिए शाकनाशी दवाइयों का उपयोग एवं अन्य विधि जैसे यांत्रिक वीडर द्वारा खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए अन्यथा धान की उपज पर विपरीत असर पड़ता है। इसी प्रकार सूत्रक्रमियों का प्रबंधन भी आवश्यक होता है (चित्र 3)। धान में जड़-गांठ सूत्रकृमि के प्रभाव से जड़ों में सफ़ेद रंग की गांठे बन जाती हैं जिससे पौधों का रंग पीला हो जाता है, पौधों की ऊंचाई कम रहती है, ब्यांत कम होता है और अंततः पैदावार में कमी आ जाती है। इनकी रोकथाम के लिए कार्बाफ्युरान 3G @ 30 कि.ग्रा./ हैक्टेयर का प्रयोग किया जा सकता है।



चित्र 3. धान में जड़-गाँठ सूत्रक्रमी का प्रभाव

खरपतवार प्रबंधन

रोपाई किए गए धान की अपेक्षा सीधी वुवाई किए गए धान मे खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है। धान की सामान्य फसल की वृद्धि के साथ ही कई प्रकार के चौड़ी व संकरी पत्तियों वाले खरपतवार उग आते हैं। जो फसल में दिए गए पानी और पोषक तत्वों के अधिकांश भाग का अवशोषण कर लेते हैं जिसके फलस्वरूप धान की गुणवत्ता और पैदावार में भारी कमी आ जाती है। इस प्रकार किसानों को अपनी फसल का अपेक्षित मूल्य नहीं मिल पाता है। धान की परंपरागत विधि से रोपित फसल में प्रथम 30 से 60 दिनों तक तथा सीधी बुवाई से उगाए धान में बुवाई के पहले 6 सप्ताह तक फसल-खरपतवार स्पर्धा का सबसे महत्वपूर्ण क्रांतिक काल (समय) माना जाता है। यदि इस समय खरपतवारों की रोकथाम नहीं की जाती है तो रोपाई किए गए धान की पैदावार में 10-40 प्रतिशत तक तथा सीधी बुवाई



किए गए धान की पैदावार में 50 प्रतिशत से भी अधिक गिरावट आ जाती है। अच्छी फसल स्वयं खरपतवार को मारती है। सस्य क्रियाओं से भी खरपतवारों की रोकथाम करके अच्छी फसल ले सकते हैं परंतु ये सस्य क्रियाएं सभी फसलों में एक जैसी संस्तुत नहीं कर सकते हैं ।

गर्मी के मौसम (मई-जून) में खेत की गहरी जुताई करके छोड देते हैं, जिससे मृदा मे दबे हुए खरवतवारों के बीज एंव अन्य प्रजनक भाग खेत की सतह पर आकर स्वयं नष्ट हो जाते है। खरवतवारों की रोकथाम के साथ-साथ ही इस विधि से कीड़े-मकोडों एवं सूत्रकृमियों का नियंत्रण भी हो जाता है। बुवाई के पहले भूमि की सिंचाई कर देते हैं और 15-20 दिन के लिए भूमि को वैसा ही छोड़ देते हैं, जिसमें सभी वार्षिक खरवतवार उग आते हैं। इसके बाद इन खरपतवारों को जुताई करके या पैराक्वाट (1.0 कि.ग्रा./है.) का छिड़काव करके नष्ट कर देते हैं। इसके बाद फसल की बुवाई करते हैं। फसल अवधि के दौरान कई बार निराई-गुड़ाई करके खरवतवारों का नियंत्रण करना पड़ता है। वैसे फसल बोने के बाद तथा उगने से पहले खरवतवारनाशी दवाई छिड़ककर और बुवाई के 25-30 दिन के बाद एक बार हाथ द्वारा निराई-गुड़ाई करके खरवतवारों का नियंत्रण करना एक अच्छा तरीका है। आजकल श्रमिकों की कम उपलब्धता और उनकी अधिक मजदूरी के कारण पारंपरिक विधियों के द्वारा (निराई-गुड़ाई) खरपतवार नियंत्रण करना असम्भव सा होता जा रहा है। अतः रसायनों के द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण जल्दी, कम लागत में व प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है और यह विधि आर्थिक दृष्टिकोण से भी लाभकारी है। धान की विभिन्न पद्धतियों में प्रयोग किए जाने वाले प्रमुख शाकनाशी, उनकी मात्रा और प्रयोग विधि का विवरण सारणी 2 में दिया गया है।

सारणी 2. धान की फसल में खरपतवारनाशी दवाइयों की सिफारिश

शाकनाशी	सक्रिय तत्व की मात्रा (कि.ग्रा./ है.)	प्रयोग का समय	टिप्पणी
पेंडीमेथालिन	1.0 – 1.5	बुवाई या रोपाई के 1-2 दिन बाद	लगभग सभी खरपतवारों के खरपतवारों को नष्ट करती है। इसे छिड़कते समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
आक्साडायरजाइल	0.080 – 0.100	बुवाई या रोपाई के 2-3 दिन बाद	लगभग सभी खरपतवारों के खरपतवारों को नष्ट करती है। इसे छिड़कते समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
पाइराजोसल्फ्यूरोन ईथाइल	0.020 – 0.025	बुवाई या रोपाई के 1-2 दिन बाद	सावंक के प्रभावी नियंत्रण हेतु उपयुक्त, प्रयोग के समय खेत से पानी निकाल दें।
प्रेटिलाक्लोर+ सेफनर	0.750	बुवाई या रोपाई के 3-5 दिन बाद	सभी प्राकर के घास जाति व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण होता है।
बिसपाईरीबैक-सोडियम	0.020 – 0.025	बुवाई या रोपाई के 25-30 दिन बाद	लगभग सभी खरपतवारों को नष्ट करती है। वर्षा की आशंका हो तो छिड़काव न करें। इस दवाई को सल्फर या कॉपर पेस्टीसाइड के साथ मिलाकर न छिड़कें।

कीट प्रबंधन

फसल को कीटों से बचाना आवश्यक होता है। कीट नियंत्रण के लिए समेकित कीट प्रबंधन (आई.पी.एम.) को अपनाना बेहतर होता है। इसमें कीड़ों के प्रकोप को कम करने के लिए नियंत्रण के विभिन्न तरीकों जैसे प्रतिरोधी किस्मों, शस्य क्रियाओं, यांत्रिक विधियों, व्यवहारिक विधियों, जैविक विधियों तथा रासायनिक विधियों का एकीकृत ढंग से उपयोग किया जाता है। आई.पी.एम. में कीटनाशियों को अंतिम विकल्प के रूप में प्रयोग में लाना चाहिए न कि पहली पसंद के रूप में। कीटनाशियों का प्रयोग आवश्यकतानुसार करना चाहिए और इनके अनुचित या अत्यधिक प्रयोग से बचना चाहिए। कीटनाशियों का आवश्यकतानुसार प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न कीड़ों के आर्थिक दहलीज स्तर (ई.टी.एल.) प्रमाणित किए गए हैं। आर्थिक दहलीज स्तर पर कीट नियंत्रण से न केवल कीटनाशियों पर होने वाले व्यर्थ खर्च से बचा जा सकता है बल्कि इनसे पर्यावरण को होने वाले नुकसान से भी बचा जा सकता है।

तना छेदक, पत्ती लपेटक (चित्र 4), हिस्पा, गंधी एवं भूरा फुदका (चित्र 5) धान के महत्वपूर्ण कीट हैं। खरपतवारों का नियंत्रण, उचित पौध संख्या, समय पर बुवाई/ रोपाई एवं संतुलित उर्वरक प्रयोग करके कीड़ों की संख्या में कमी लाई जा सकती है। आवश्यकता पड़ने पर तना छेदक, पत्ती लपेटक, एवं भूरा फुदका के नियंत्रण के लिए दानेदार कीटनाशी कार्टेप हाइड्रोक्लोराइड 4जी @ 25 कि.ग्रा./ हैक्टेयर बुरकाव करें अन्यथा क्लोरपायरीफॉस 20 ईसी @ 2 मि.लि./लिटर या क्विनलफॉस 25 ईसी @ 2 मि.लि./लिटर या कार्टेप हाइड्रोक्लोराइड 50 एसपी @ 1 ग्रा./लिटर का छिड़काव करें। गंधी कीट के नियंत्रण के लिए ऐसीफेट 75 एसपी @ 1.5 ग्रा./ लिटर या क्विनलफॉस 25 ईसी 2 मि.लि./ लिटर या डीडीवीपी 76 ईसी 1.5 मि.लि./लिटर का छिड़काव करें।



चित्र 4. पत्ती लपेटक कीट द्वारा प्रभावित धान की फसल



चित्र 5. भूरा फुदका से प्रभावित धान की फसल

रोग प्रबंधन

रोग फसल की भरपूर पैदावार लेने में बाधक होते हैं। इसलिए रोगों की पहचान कर, समय पर इनका नियंत्रण करके भरपूर पैदावार ली जा सकती है। अतः धान के मुख्य रोगों की पहचान एवं इनकी रोकथाम आवश्यक है। धान की फसल मुख्य तौर पर बदरा (चित्र 6), जीवाणु पत्ती अंगमारी अथवा झुलस, भूरा धब्बा, आभासी कंड (चित्र 7), पर्णच्छद अंगमारी या शीट ब्लाइट, बकानी (चित्र 8) और खैरा, आदि रोगों से प्रभावित होती है। समेकित रोग प्रबंधन में उपलब्ध सस्य-क्रियाओं (उचित फसल चक्र, समय पर रोपाई/ बुवाई, खरपतवार नियंत्रण, बीज उपचार, संतुलित उर्वरक प्रयोग), जैविक एवं रासायनिक विधियों के उपयुक्त समायोजन से किया जाता है। साथ ही रोग-रोधी किस्मों को भी इसमें शामिल किया जाता है।

यदि उपरोक्त उपाय अपनाने के बावजूद भी रोग आ जाते हैं तो संस्तुत रसायन का प्रयोग करके उसकी रोकथाम करें। उदाहरण के लिए जीवाणु पत्ती झुलसा के नियंत्रण के लिए 74 ग्रा. एग्रीमाइसीन-100 और 500 ग्रा. कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (फाइटोलान/ ब्लाइटाक्स-50/ क्यूप्राविट) का 500 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से तीन-चार बार छिड़काव करें। पहला छिड़काव रोग प्रकट होने पर तथा आवश्यकतानुसार 10 दिन के अन्तराल पर करें। इसी प्रकार यदि पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देने लगें (बदरा रोग) तो कार्बेन्डाजिम 1000 ग्रा. या ट्राइसायक्लेजोल 500 ग्रा. का 500 लिटर पानी में घोल बनाकर एक हैक्टेयर में छिड़काव करें।



चित्र 6. बदरा रोग (पत्ती) से प्रभावित धान की फसल



चित्र 7. आभासी कंड रोग से प्रभावित धान की फसल



चित्र 8. बकानी रोग से प्रभावित धान की फसल

कटाई एवं गहाई

धान की कटाई का उचित समय, प्रजाति, वातावरण, सस्य प्रक्रिया एवं बढाव पर निर्भर करता है। समय का आकलन नमी के आधार पर किया जा सकता है। धान की कटाई के लिए 20 से 22 प्रतिशत नमी उपयुक्त मानी गई है। जल्दी कटाई कर लेने से भी उत्पादन, लाभ एवं गुणवत्ता में भारी कमी आती है। इस तरह के उत्पाद के भंडारण में भी काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। दूसरी तरफ देर से कटाई करने पर चावल निकालने के समय दानों का टूटना अवश्यंभावी है। कटाई करते समय भी दानों का झड़ना देखा जाता है। साथ ही साथ चिड़ियों और चूहों द्वारा भी फसल का नुकसान होता है।

यदि धान की कटाई हसियां द्वारा की जाती है तो इसमें लगभग 25 मानव-दिवस प्रति हैक्टेयर श्रम की आवश्यकता होती है। जबकि रिपर यंत्र से 2 - 4 हैक्टेयर/दिन धान की कटाई की जा सकती है। हालांकि रिपर से कटाई करने के लिए जमीन का समतल (लेवल) होना आवश्यक है। साथ ही साथ यह खड़ी फसल को दक्षता से काट पाता है, पर गिरी

हुई फसल की कटाई इससे प्रायः संभव नहीं होती है। इसी प्रकार कम्बाईन यंत्र 0.5 हैक्टेयर/ घंटा तक धान की कटाई एवं गहाई करने की क्षमता रखता है, लेकिन इसके लिए समतल एवं बड़े खेत होने का होना लाभकारी होता है। फसल काटने के उपरांत खेत में बचे हुए अवशेष को खेत में ही मिला दें। इससे जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। इसे किसी भी हालात में न जलाएं क्योंकि खेत में आग लगाने से सर्वप्रथम तो नमी कम होती है और साथ-साथ खेत में उपस्थित मित्र जीवों का नाश हो जाता है। इतना ही नहीं खेत की उर्वरा शक्ति पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है।

धान की गहाई में साधारणतौर पर मानव श्रम का उपयोग किया जाता है। गहाई का कार्य मानव द्वारा, पशु द्वारा एवं शक्ति चालित यंत्रों द्वारा किया जाता है। गहाई करने के लिए कटे हुए धान के पौधों को दृढ़ संरचना (लकड़ी या लोहे के बड़े सामान) पर पटका जाता है। इस प्रक्रिया से धान के दाने पौधों से अलग हो जाते हैं। इस क्रम में काफी पौधों के अंग भी टूट कर धान में मिश्रित हो जाते हैं जिनको हवा के झोकें द्वारा अलग किया जाता है। इस प्रक्रिया में समय एवं मानव श्रम प्रचुर मात्रा में लगता है जिससे उत्पादन लागत काफी बढ़ जाती है। इस परिस्थिति में गहाई यंत्रो का उपयोग करना लाभकारी रहता है। शक्ति-चालित थ्रेशरों (गहाई यंत्र) का प्रयोग करके मड़ाई (गहाई) कार्य को शीघ्र समाप्त किया जा सकता है। कुल मिलाकर धान के विभिन्न क्रिया-कलापों में मशीनों का प्रयोग करके धान का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है और उत्पादन लागत में कमी लाई जा सकती है जिससे लाभ में वृद्धि होगी।

उपज

धान की उपज अनेक कारकों जैसे किस्म, जल की उपलब्धता और प्रबंधन, आदि पर निर्भर करती है। सामान्य तौर पर बासमती किस्मों की औसत पैदावार 3.5 से 5.0 टन/है., अधिक उपज देने वाली किस्मों की औसत पैदावार 5.0 से 6.0 टन/है. और संकर किस्मों की औसत पैदावार 5.5 से 7.0 टन/है. होती है। सिंचित दशा में धान की पैदावार असिंचित दशा की तुलना में अधिक होती है।

मक्का



मक्का एक बहुपयोगी फसल है, जिसे ख़रीफ़ और रबी दोनों मौसमों में उगाया जा सकता है। मक्का को विश्व में खाद्यान्न फसलों की रानी कहा जाता है क्योंकि इसकी उत्पादन क्षमता खाद्यान्न फसलों में सबसे अधिक है। भारत में लगभग 75% मक्का की खेती खरीफ के मौसम में होती है। वर्ष 2022-23 में 100 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में मक्का उगायी गई जिसका उत्पादन 336 लाख टन तथा उत्पादकता 3349 कि.ग्रा./है. थी। आजकल मक्का की विभिन्न प्रजातियों को अलग-अलग तरह से उपयोग में लाया जाता है। मक्का को पॉपकॉर्न, स्वीटकॉर्न, एवं बेबीकॉर्न के रूप में पहचान मिली है जो सामान्य मक्का से महंगी हैं। कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, राजस्थान प्रमुख मक्का उत्पादक राज्य हैं।

मृदा

मक्का की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। अच्छी जल निकासी वाली और पी.एच. मान 6.5-7.5 वाली मिट्टीयां मक्का की खेती के लिए अच्छी होती हैं। अम्लीय एवं लवणीय मिट्टी मक्का की खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती हैं। उचित जल निकासयुक्त बलुई मटियार से दोमट मृदा उत्तम होती है। खेत में पानी जमा होना मक्का की फसल के लिए अच्छा नहीं है। जल निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। जिस जमीन में नमकीन पानी की समस्या है वहां मक्का की बिजाई मेड़ के ऊपर के बजाय साइड में करें जिससे जड़ें नमक से प्रभावित न हों।

उन्नत प्रजातियां

मक्का की उत्पादन वृद्धि में अधिक उपज देने वाली प्रजातियों का विशेष महत्व रहा है। इनमें मुख्यतः संकर एवं संकुल प्रजातियां सम्मिलित होती हैं जो किसी क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत की जाती हैं (सारणी 1)।

सारणी 1. मक्का की प्रमुख उन्नतशील प्रजातियां

किस्म	अनुशंसित क्षेत्र	औसत उपज (टन/हैक्टेयर)	मौसम	मक्का प्रकार
गुजरात आनंद सफेद मक्का हाइब्रिड-2	गुजरात	7.22	ख़रीफ़	सामान्य
शक्तिमान-5	उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड	8.2	रबी	गुणवत्तापूर्ण प्रोटीन मक्का (क्यूपीएम)
डीएमआरएच 1301	पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़	9.9	रबी	सामान्य
डीएमआरएचपी 1402	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली एनसीआर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और गुजरात	3.9	ख़रीफ़	पॉपकॉर्न
डीएमआरएच 1308	राजस्थान, गुजरात, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश	9.6	रबी	सामान्य
करीमनगर मक्का	तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु; वर्षा आधारित हैं	7.9	वर्षा आधारित ख़रीफ़	सामान्य
पूसा एचएम-8 उन्नत	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और तमिलनाडु	6.3	ख़रीफ़	क्यूपीएम
पूसा एचएम-9 उन्नत	बिहार, झारखंड, ओडिशा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल	5.2	ख़रीफ़	क्यूपीएम
पूसा एचएम-4 उन्नत	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश	6.4	ख़रीफ़	क्यूपीएम
पूसा विवेक क्यूपीएम-9 उन्नत	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, मिजोरम, असम, त्रिपुरा, नागालैंड, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और तेलंगाना	5.6	ख़रीफ़	क्यूपीएम
पंत संकर मक्का 4	उत्तराखंड	4.6	ख़रीफ़	सामान्य



किस्म	अनुशंसित क्षेत्र	औसत उपज (टन/हैक्टेयर)	मौसम	मक्का प्रकार
शालीमार पॉप कॉर्न-1	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, ओडिशा, झारखंड, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा और नागालैंड	3.9	ख़रीफ़	पॉपकॉर्न
विवेक हाइब्रिड 27	जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़	2.2	ख़रीफ़	बेबी कॉर्न
सेंट्रल मक्का वीएल 55	जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, उत्तर-पूर्वी पहाड़ीयां (ज़ोन - I) और कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और महाराष्ट्र (ज़ोन IV)	7.6	ख़रीफ़	सामान्य
गुजरात आनंद पीली मक्का हाई-1	गुजरात	6.8	वर्षा सिंचित ख़रीफ़	सामान्य
सेंट्रल मक्का वीएल स्वीट कॉर्न 1	जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, नॉर्थ ईस्ट हिल्स, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश	10.8	ख़रीफ़	स्वीट कॉर्न
पीएमएच 7	पंजाब	7.5		सामान्य
शियाट्स मक्का 3	उत्तर प्रदेश	3.8	रबी	सामान्य
पीएमएच 10	पंजाब	11.7	वसंत	सामान्य
हेमा	कर्नाटक	5.6	वसंत	सामान्य



किस्म	अनुशंसित क्षेत्र	औसत उपज (टन/हैक्टेयर)	मौसम	मक्का प्रकार
प्रताप हाइब्रिड मक्का-3	राजस्थान, गुजरात, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश	5.6	ख़रीफ़	सामान्य
पालम संकर मक्का 2	हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, उत्तराखंड और उत्तर-पूर्वी पहाड़ी राज्य	9.8	ख़रीफ़	सामान्य
प्रताप मक्का-9	राजस्थान	4.8	ख़रीफ़ और रबी	सामान्य
करीमनगर मक्का-1	तेलंगाना	9.5	ख़रीफ़ और रबी	सामान्य
पीएमएच 7	पंजाब	7.5	वसंत	सामान्य
पीएमएच 8	पंजाब	8.3	वसंत	सामान्य
पालम संकर मक्का 1	राजस्थान, गुजरात, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश	5.3	ख़रीफ़	सामान्य
बीपीसीएच-6	देश भर के सभी जोन	3.2	ख़रीफ़	पॉपकॉर्न
प्रताप संकर मक्का-3	राजस्थान, गुजरात, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश	5.6	ख़रीफ़	सामान्य
पीएचएम-12	जम्मू और कश्मीर	5.8	ख़रीफ़	सामान्य
सीओएच (एम) 10	आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़	7.2	ख़रीफ़	सामान्य
एचएम-13	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड	6.6	ख़रीफ़	सामान्य
पीएमएच 6	बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, ओडिशा और उत्तर प्रदेश	6.3	ख़रीफ़	सामान्य
सीओएच (एम) 7	उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और कर्नाटक	7.8	ख़रीफ़	सामान्य



किस्म	अनुशंसित क्षेत्र	औसत उपज (टन/हैक्टेयर)	मौसम	मक्का प्रकार
सीओएच (एम) 8	उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु, कर्नाटक, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और महाराष्ट्र	7.1	ख़रीफ़	सामान्य
सीओएच (एम) 9	उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, ओडिशा, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़	6.4	ख़रीफ़	सामान्य
डीएचएम 121	ओडिशा, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, गुजरात, राजस्थान, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश	5.4	ख़रीफ़	सामान्य
जीएच 0727	कर्नाटक	7.5	ख़रीफ़	सामान्य
विवेक मक्का हाइब्रिड 47	उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम	6.9	ख़रीफ़	सामान्य
विवेक मक्का हाइब्रिड 53	उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, उत्तर प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम	6.9	ख़रीफ़	सामान्य
विवेक मक्का हाइब्रिड 51	गुजरात, राजस्थान, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश	5.1	ख़रीफ़	सामान्य

खेत की तैयारी

ख़रीफ़ में, खेत की तैयारी जून के दूसरे सप्ताह में शुरू कर देनी चाहिए। खरीफ की फसल के लिए एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। अगर खेत गर्मियों में खाली हैं तो जुताई गर्मियों में करना अधिक लाभदायक रहता है। इस जुताई से खरपतवार, कीट पतंगें व बीमारियों की रोकथाम में काफी सहायता मिलती है।



खेत की नमी को बनाये रखने के लिए कम से कम समय में जुताई करके तुरंत पाटा लगाना लाभदायक रहता है। यदि किसान जीरो टिलेज (शून्य जुताई) या संरक्षित कृषि की नवीनतम तकनीक अपनाना चाहते हैं, तो लेजर लैंड लेवलर की मदद से भूमि को अच्छी तरह से समतल कर लेना चाहिए।

बीज एवं बुवाई

मक्का को पूरे वर्ष उगाया जा सकता है, अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए खरीफ मौसम में इसकी बुवाई 15 जुलाई से पहले कर लेनी चाहिए। भारत के उत्तरी भाग में रबी मक्का की बुवाई नवम्बर में की जानी चाहिए। बेहतर अंकुरण के लिए बुवाई से पहले मिट्टी में उचित नमी सुनिश्चित करें। जायद काल में मक्का की बुवाई फरवरी में पूरी कर लेनी चाहिए। पौधों की जड़ों को पर्याप्त नमी मिलती रहे और जल भराव से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए यह उचित है कि फसल को मेड़ों पर बोया जाए । बुवाई पूर्वी-पश्चिमी दिशा की मेड़ों के दक्षिणी भाग में करनी चाहिए। बीज को उचित दूरी पर लगाना चाहिए। बुवाई की नई विधियां नीचे दी गई हैं:

(1) पारंपरिक-बीज ड्रिल - फ्लैट रोपण

किसान मक्का की बुवाई के लिए छिटकवां विधि के स्थान पर साधारण सीड (बीज) ड्रिल का प्रयोग कर सकते हैं। पंक्तिबद्ध मक्का बोने से न केवल अधिक उपज मिलती है, बल्कि विभिन्न अंतर-फसल कार्यों का प्रबंधन भी आसान हो जाता है। बीज दर और पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी का विवरण सारणी 2 में दिया गया है

(2) शून्य जुताई रोपण (जीरो टिलेज)

जीरो टिलेज (शून्य जुताई) बुवाई मक्का की बुवाई की नई विधि है, जिसमें खेत में प्राथमिक जुताई नहीं की जाती है, जबकि बीज की सीधी बुवाई जीरो-सीड ड्रिल मशीन का उपयोग करके की जाती है। इस तकनीक से चिकनी मिट्टी के अलावा अन्य सभी प्रकार की मृदाओं में मक्का की खेती की जा सकती है। शून्य जुताई विधि से प्रति हैक्टेयर लगभग 2000-3000 रुपये की बचत होती है, साथ ही ईंधन और समय की भी बचत होती है। खरपतवारों का प्रकोप कम होता है, विशेषकर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का।

(3) फर्ब (FIRB) तकनीक से बुवाई

इस तकनीक में मक्का को ट्रेक्टर चलित रिजर-कम ड्रिल से मेंड़ों पर एक पंक्ति में बोया जाता है। इस तकनीक से खाद एवम् पानी की काफी बचत होती है और उत्पादन भी प्रभावित नहीं होता है। इस तकनीक से बीज उत्पादन के लिए भी मक्का की खेती की जा रही है। इस विधि से मक्का उत्पादन करने पर न सिर्फ नालियों का प्रयोग सिंचाई के लिए किया जाता है अपितु अधिक पानी (वर्षा ऋतु) की निकासी के लिये भी किया जा सकता है। यह विधि बीज, पानी और उर्वरक बचाने में मदद करती है, जिससे खेती की लागत कम हो जाती है। जड़ों के बेहतर विकास के कारण फसल का गिरना कम होता है। इस विधि से मक्का उगाने के लिए लवणीय और क्षारीय मिट्टी का भी उपयोग किया जा सकता है।

सारणी 2. विभिन्न मक्का फसलों के लिए उचित बीज दर, अंतरण एवं पौधों की संख्या

क्र.सं.	मक्का का उद्देश्य	बीज दर (कि.ग्रा./ हैक्टेयर)	पौधों की ज्यामिति (पंक्ति × पौधा, सें.मी.)	पौधों की संख्या /हैक्टेयर
1	सामान्य मक्का	20.0	60 × 20	83333
			75 × 20	66666
2	गुणवत्तायुक्त प्रोटीन मक्का (क्यूपीएम)	20.0	60 × 20	83333
			75 × 20	66666
3	स्वीट कॉर्न	8.0	75 × 25	53333
			75 × 30	44444
4	बेबी कॉर्न	25.0	60 × 20	83333
			60 × 15	111111
5	पॉपकॉर्न	12.0	60 × 20	83333
6	चारा-मक्का	50.0	30 × 10	333333

मक्का की फसल को बीज और प्रमुख मिट्टी-जनित बीमारियों और कीटों से बचाने के लिए, बुवाई से पहले कवकनाशी और कीटनाशकों के साथ बीज उपचार की अनुशंसा की जाती है। मक्का की फसल को *टर्सिकम* लीफ ब्लाइट, बैंडेड लीफ और शीथ ब्लाइट, मेडीस लीफ ब्लाइट जैसी बीमारियों से बचाने के लिए बीजों का उपचार बाविस्टिन + कैप्टान, 1:1 के अनुपात में 2 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से करें। मक्का की फसल को डंठल सड़न रोग से बचाने के लिए बीज को कैप्टन 2.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। इसी प्रकार, दीमक और शूट फ्लाई (प्ररोह मक्खी) से प्रभावित क्षेत्रों में, बीज का उपचार इमिडाक्लोप्रीड 4 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से अवश्य करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

आवश्यक पोषक तत्वों की दर पहले से उपलब्ध मिट्टी के पोषक तत्व और फसल प्रणाली पर निर्भर करती है। मक्का की खेती में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (आईएनएम) बहुत महत्वपूर्ण रणनीति है। इसीलिए, मक्का की अधिक आर्थिक उपज के लिए, उर्वरकों के अलावा, बुवाई से 10-15 दिन पहले प्रति हैक्टेयर 10 टन गोबर की खाद का प्रयोग करें। अधिक उपज के लिए मक्का में प्रति हैक्टेयर 150-180 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 70-80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$), 70-80 कि.ग्रा. पोटैशियम ($के_2ओ$) और 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट हेप्टाहाईड्रेट डालने की सिफारिश की जाती है। फॉस्फोरस, पोटैशियम और जिंक की पूरी खुराक बुवाई के समय ही डालनी चाहिए। उच्च उत्पादकता और उपयोग दक्षता के लिए नीचे दिए गए विवरण के अनुसार नाइट्रोजन की आपूर्ति 5 समय में की जानी चाहिए। डायना भरते समय नाइट्रोजन के प्रयोग से अनाज का भराव बेहतर होता है। इसीलिए, उच्च नाइट्रोजन उपयोग दक्षता के लिए नाइट्रोजन का प्रयोग निम्न प्रकार किया जाना चाहिए।

- 20 प्रतिशत नाइट्रोजन बुवाई के समय देनी चाहिए।
- 20 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल में चार पत्तियां आने के समय देनी चाहिए।

- 30 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल में 8 पत्तियां आने के समय देनी चाहिए।
- 30 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल पुष्पन अवस्था में हो या फूल आने के समय देनी चाहिए तथा
- 10 प्रतिशत नाइट्रोजन का प्रयोग दाना भराव के समय करना चाहिए।

जल प्रबंधन

मक्का एक ऐसी फसल है जो न तो सूखा सहन कर सकती है और न ही अधिक पानी। इसीलिए, खेत में जल निकासी के लिए नालियां बुवाई के समय ही तैयार कर देनी चाहिएं व समय पर अतिरिक्त पानी खेत से निकाल देना चाहिए। यदि मानसून सामान्य रहे तो खरीफ मौसम में मक्का को अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। हालांकि लंबे समय तक सूखे के दौरान, कुछ संवेदनशील चरणों में सिंचाई की जानी चाहिए। नई पौध अवस्था, घुटनों तक ऊंचाई वाली अवस्था, फूल आने और दाना भरने की अवस्था पानी के तनाव के लिए सबसे संवेदनशील अवस्थाएं हैं और इसीलिए इन अवस्थाओं में सिंचाई सुनिश्चित की जानी चाहिए। रबी एवं वसंत ऋतु में मक्का की नमी संवेदनशील अवस्थाओं पर सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

मक्का में खरपतवार एक गंभीर समस्या है, खासकर खरीफ/मानसून के मौसम में। ये पोषक तत्वों के लिए मक्का से प्रतिस्पर्धा करते हैं और उपज को 35 – 50% तक नुकसान पहुंचाते हैं। अत: अधिक उपज प्राप्त करने के लिए समय पर खरपतवार प्रबंधन आवश्यक है। एट्राजीन व पायरोक्सासल्फोन सभी प्रकार के खरपतवारों (संकरी पत्ती, चौड़ी पत्ती) को नियंत्रित करते हैं। मक्का की बुवाई के बाद लेकिन अंकुर-पूर्व एट्राजीन (एट्राट्राफ 50 डब्ल्यूपी, गेसाप्रिम 500 एफडब्ल्यू) 400-600 ग्रा. प्रति एकड़ या पायरोक्सासल्फोन (85% डबलू जी) 51 ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 600 लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़क दें। मक्का की पौध के उगने से पहले एट्राजीन का प्रयोग और उसके बाद 35-40 दिनों पर हाथ से एक निराई करने से खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण हो जाता है। यदि निराई-गुड़ाई करना संभव नहीं है तो किसी भी शाकनाशी रसायन जैसे टेम्बोट्रेन / टोप्रमेज़ोन/ मेसोट्रियोन 2.27% + एट्राज़िन 22.7%/ हेलोसल्फ्यूरॉन मिथाइल (मोथा के लिए) का प्रयोग करें। उपयुक्त शाकनाशी रसायनों का उल्लेख सारणी 3 में दिया गया है।

सारणी 3. मक्का फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए उपयुक्त शाकनाशी रसायन

क्र.सं.	शाकनाशी रसायन	मात्रा (ग्रा./एकड़)	छिड़काव का समय (दिन)
1	एट्राजीन	400-600	बुवाई के 0-3 दिन के अंदर
2	पायरोक्सासल्फोन	51	बुवाई के 0-3 दिन के अंदर
3	टोप्रमेज़ोन	12	बुवाई के 20-30 दिन के मध्य
4	टेम्बोट्रेन	50	बुवाई के 20-30 दिन के मध्य
5	मेसोट्रियोन 2.27% + एट्राज़िन 22.7%	350	बुवाई के 20-30 दिन के मध्य
6	हेलोसल्फ्यूरॉन मिथाइल (मोथा के लिए)	27	बुवाई के 20-30 दिन के मध्य (मोथा की 4-6 पत्तियों की अवस्था)

एकीकृत कीट प्रबंधन

- प्यूपा को सूर्य की रोशनी और शिकारी पक्षियों से बचाने के लिए खेतों की गहरी जुताई करें।
- जहां भी संभव हो, खेतों में 200 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से नीम की खली डालें।
- खेत की मेड़ों को साफ़ रखें और प्राकृतिक शत्रुओं को आकर्षित करने के लिए गेंदा, तिल, नाइजर, सूरजमुखी, धनिया, सौंफ आदि जैसे फूल वाले पौधे लगाएं।
- सायनट्रानिलिप्रोल 19.8% + थियामेथोक्सम 19.8% एफएस @ 6 मि.लि./कि.ग्रा. से बीजोपचार करने पर फसल के विकास के 15-20 दिनों के लिए सुरक्षा प्रदान करता है।
- मक्का के खेतों के चारों ओर नेपियर घास/संकर नेपियर घास की ट्रैप (पाश) फसल को 3-4 कतारों में लगाएं।
- बुवाई के तुरंत बाद प्रति एकड़ 4 फेरोमोन ट्रैप लगाएं और प्रति ट्रैप कीट संख्या की निगरानी करें।
- यदि आपको प्रतिदिन प्रति जाल में एक कीट मिलता है, तो पहला छिड़काव 5% नीम बीज गिरी अर्क (एनएसकेई) या एजाडिरैक्टिन, 1500 पीपीएम (1 लिटर/एकड़) के साथ करना चाहिए।
- यदि संक्रमण 10% से अधिक है, तो क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 18.5 एससी (80 मि.लि. /एकड़) @ 0.4 मि.लि. / लिटर का छिड़काव करें; या थियामेथोक्सम 12.6 % + लैम्ब्डा साइहलोथ्रिन 9.5% ZC (50 मि.लि. /एकड़) @ 0.25 मि.लि. /लिटर; या स्पिनेटोरम 11.7 % एससी (100 मि.लि. /एकड़) @ 0.5 मि.लि. /लिटर; या इमामेक्टिन बेंजोएट 5% एसजी (80 ग्रा./एकड़) @ 0.4 ग्रा./लिटर की सिफारिश की जाती है।

कीट प्रबंधन

1. फ़ॉल आर्मीवर्म: फॉल आर्मी वर्म एक नया आक्रामक खतरनाक कीट है (चित्र 1)। यह पहली बार भारत में मई, 2018 में रिपोर्ट किया गया था। मादा पतंगे पत्ती के ऊपरी या नीचे की तरफ अंडे देती हैं और भूरे रंग के शल्कों से ढकी होती हैं। यह मक्का की फसल के अंकुर निकलने से लेकर भुट्टे के विकास तक सभी चरणों पर हमला करता है।



चित्र 1. फॉल आर्मी वर्म के कारण मक्का में नुकसान



2. तना छेदक कीट: डंठल/तना छेदक भारत में मक्का का एक प्रमुख कीट है, जो पूरे देश में मानसून के मौसम में आता है। कीट अंकुरण के 10-25 दिन बाद पत्तियों की निचली सतह पर अंडे देता है। कीट का लार्वा पत्तियों का वृत्ताकार गुच्छा में प्रवेश करता है और पत्तियों को नुकसान पहुंचाता है ।

3. गुलाबी तना छेदक कीट: यह विशेषकर प्रायद्वीपीय भारत में शीत ऋतु के दौरान होता है। सेसमिया कीट रात्रिचर होता है और निचली पत्ती के आवरण पर अंडे देता है। सेसमिया के लार्वा पौधे के आधार के पास प्रवेश करते हैं और तने को नुकसान पहुंचाते हैं। तना छेदक कीट तथा गुलाबी छेदक का एकीकृत कीट प्रबंधन निम्न प्रकार है:

- ठूंठों को एकत्र करना एवं नष्ट करना।
- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई (संरक्षित कृषि के अंतर्गत अनुशंसित नहीं) ।
- जाल फसल के रूप में सीमा में नेपियर घास का रोपण।
- मक्का को लोबिया के साथ 2:1 के अनुपात में अंतरफसल करें।
- अंकुरण के 7 और 15 दिन बाद ट्राइकोग्रामा चिलोनिस 8 कार्ड/हैक्टेयर (1,50,000 परजीवी अंडे/हैक्टेयर) के दो बार छोड़े ।
- जब संक्रमण 10% से अधिक हो जाए, तो क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 18.5 एससी @150 मि.लि./हैक्टेयर का छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

देश भर में विभिन्न मौसमों के दौरान कई बीमारियां होती हैं, यदि उनका उचित समय पर प्रबंधन न किया जाए तो इससे उपज को नुकसान होता है। भारत में मक्का की प्रमुख बीमारियों के कारण अनुमानित नुकसान लगभग 13.2% है, जिनमें से पत्तियों के रोग (5%), डंठल सड़न, जड़ सड़न, बाली सड़न (5%) उपज में बड़ी हानि का कारण बनते हैं। प्रमुख बीमारियों और उनके प्रबंधन के तरीकों का वर्णन नीचे दिया गया है

1. मेडीस लीफ ब्लाइट /सदर्न कॉर्न लीफ ब्लाइट: पत्तियों की शिराओं के बीच में पीले भूरे अंडाकार धब्बे बन जाते हैं जो बाद में लंबे होकर चौकोर हो जाते हैं। इनसे पत्तियां जली हुई दिखाई देती हैं। इस रोग को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित कार्य करें:

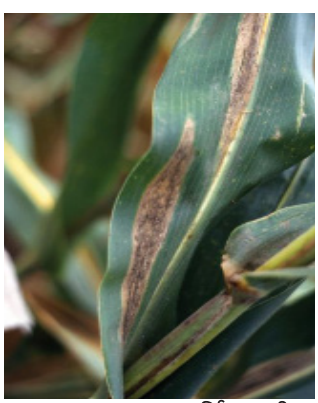
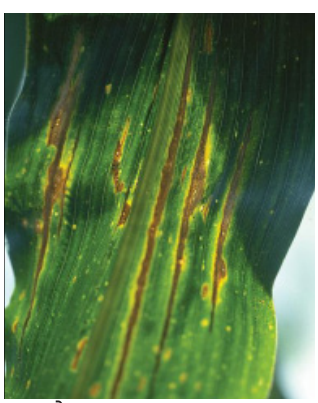
- संक्रमित फसल अवशेषों को खेत से नष्ट कर दें।
- प्रतिरोधी/सहनशील संकरों का उपयोग।
- बुवाई के लगभग 15 दिन बाद मैंकोजेब 2.5 ग्रा./लिटर पानी की दर से पत्तियों पर छिड़काव प्रभावी होता है और 10 दिन के अंतराल पर या लक्षण दिखने के तुरंत बाद दो और छिड़काव करें।
- बुवाई के लगभग 30-35 दिन बाद मैंकोजेब 2.5 ग्रा./लिटर पानी की दर से पत्तियों पर छिड़काव प्रभावी होता है और यदि आवश्यक हो तो 10 दिनों के अंतराल पर या लक्षण दिखाई देने के तुरंत बाद दो और छिड़काव करें।
- लक्षण दिखने के तुरंत बाद पत्तियों पर एज़ोक्सिस्ट्रोबिन 18.2% + डिफेनकोनाज़ोल 11.4% w/w एससी 1 मि.लि./लिटर पानी का छिड़काव करें।




मेडीस लीफ ब्लाइट के लक्षण

2. टर्सिकम लीफ ब्लाइट /नॉर्दन कॉर्न लीफ ब्लाइट: रोगी पौधों की निचली पत्तियों पर लंबे चपटे स्लेटी या भूरे रंग के धब्बे दिखायी देते हैं जो धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढते हैं। यह बीमारी पहाड़ी तथा प्रायद्वीपीय भारत में खरीफ के मौसम में ज्यादा फैलती हैं । इस रोग को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित कार्य करें:

- रोग की गंभीरता को कम करने के लिए गैर मेजबान फसल जैसे दालों के साथ फसल चक्र अपनाएं।
- फसल के अवशेषों का विनाश।
- प्रतिरोधी/सहनशील संकरों का उपयोग।
- बुवाई से पहले एज़ोस्प्रिरिलम @ 25 ग्रा. और ट्राइकोडर्मा @ 6 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज या थिरम 75 डब्लूपी @ 2 ग्रा. या कैप्टान 50 डब्लूपी @ 2 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज से उपचार करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर तुरंत 2.5 ग्रा. मैंकोजेब 75 डब्लूपी या 1 मि.लि. हेक्साकोनाजोल 5 ईसी या 1 मि.लि. कॉम्बीप्रोडक्ट फफूंदनाशी एजोक्सिस्ट्रोबिन 18.2% + डाइफेनकोनाजोल 11.4% प्रति लिटर पानी का छिड़काव करें। 15 दिनों के बाद इसे दोहराएं, जिससे कर्वुलरिया लीफ स्पॉट को भी प्रबंधित करने में मदद मिलती है।
- रोग दिखने के तुरंत बाद 15 दिन के अंतराल पर मैंकोजेब (2-3 ग्रा./लिटर) का दो छिड़काव करना होता है।

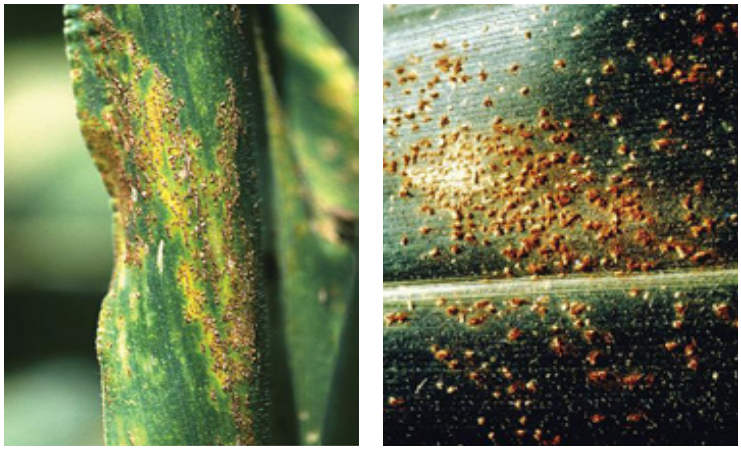



टर्सिकम लीफ ब्लाइट के लक्षण

3. बैंडेड लीफ एंड शीथ ब्लाइट: यह रोग मुख्य रूप से जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश और बिहार में होता है। रोग के प्रकट होने पर पत्तियों और आवरण पर सफेद घाव विकसित हो जाते हैं। सफेद घावों पर मौजूद बैंगनी या भूरे रंग की क्षैतिज पट्टियां रोग की विशेषता बताती हैं। इस रोग को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित कार्य करें:

- निचली पत्तियों को आवरण सहित अलग करना।
- प्रतिरोधी/सहनशील संकरों का उपयोग।
- पत्तियों पर एज़ोक्सीस्ट्रोबिन 18.2% + डिफेनकोनाज़ोल 11.4% एससी (अमिस्टार टॉप 325 एससी) 1 मि.लि./लिटर पानी का बुवाई के 50 दिन बाद छिड़काव या लक्षण दिखने के तुरंत बाद करें। यदि आवश्यक हो तो 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव दोहराएं।

4. पोलिसोरा रस्ट: मांझर बनते समय नमी अधिक होने पर पत्तियों की दोनों सतहों पर गोल, लंबे, सुनहरे या गहरे भूरे रंग का चूर्ण बिखरा दिखायी देता है जो बाद में भूरे काले रंग का हो जाता है। इस रोग को नियंत्रित करने के लिए लक्षण दिखने के तुरंत बाद मैंकोजेब (2-3 ग्रा./लिटर) के दो छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।



पोलिसोरा रस्ट के लक्षण

5. मक्का के पुष्पन के पश्चात् वृन्त सड़न: यह रोग समय पर बुवाई (10 से 20 जुलाई के मध्य में) करने से उतरी भारतीय क्षेत्रों में कम फैलता है। यह मुख्य रूप से राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार और आंध्र प्रदेश में होता है। रोग भुट्टा बनने के बाद प्रकट होता है। रोग के प्रभावी नियंत्रण के लिए फूल आने के समय पानी की कोई कमी नहीं होनी चाहिए। पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा का उपयोग करें जिसमें पोटैशियम का उपयोग रोग को कम करने में मदद करता है। खेत में उपयोग करने से 10 दिन पहले ट्राइकोडर्मा को 10 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. की दर से फार्म यार्ड खाद के साथ मिलाकर उपयोग करें। रोग की घटनाओं को कम करने के लिए हमेशा फसल चक्र अपनाने की सलाह दी जाती है।

कटाई एवं मड़ाई

जब भुट्टों को ढ़कने वाली पत्तियां पीली पड़ने लगें (दानों में 25-30 प्रतिशत नमी) तब मक्का की कटाई करनी चाहिए। मक्का के भुट्टों को छीलने/ शेलिंग से पहले अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए, उनमें नमी 13-14 प्रतिशत से कम

होनी चाहिए। शेलिंग ऊर्जा चालित मेज शेलर या हाथ से करनी चाहिए। उचित भण्डारण के लिये दानों को सुखाने की प्रक्रिया तब तक करनी चाहिए जब तक कि उनमें नमी का अंश लगभग 8-10 प्रतिशत न हो जाए और इन्हें वायु प्रवाहित जूट के थैलों में रखना चाहिए।

उपज

मक्का के दाने की उपज बहुत सारे कारकों पर निर्भर करती है। इसकी औसत उपज 4.5 से 6.0 टन/है. होती है, परंतु सिंचित दशाओं में उच्च पैदावर देने वाले संकरों से 8.0 से 10.0 टन/है. तक पैदावार ली जा सकती है।



ज्वार

ज्वार *(सोरघम)* का श्रीअन्न में एक प्रमुख स्थान है। ज्वार दुनिया की पांचवीं सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है जो उप-सहारन अफ्रीका के मूल की है। यह परंपरागत रूप से अनाज के लिए भोजन के रूप में और पशुओं के सूखे एवं हरे चारे के लिए उगाई जाती है। ज्वार दुनिया में मिस्र से 3000 ईसा पूर्व से उगाई जा रही है। ज्वार को कई नामों से जाना जाता है जैसे पश्चिमी अफ्रीका में 'महा श्रीअन्न (ग्रेट मिलेट)', 'काफिर कॉर्न', 'गिनी कॉर्न', चीन में 'कोलियन', स्पेन में 'मिलो' तथा भारत में 'ज्वार'। पौष्टिक गुणों से भरपूर ज्वार में जलवायु परिवर्तन जनित प्रतिकूल परिस्तिथियों में भी अच्छी पैदावार देने की क्षमता है। शुष्क इलाकों में ज्वार खाद्यान सुरक्षा के साथ-साथ पशु चारे का भी एक महत्पूर्ण स्रोत है।

भारत में बाजरा के बाद ज्वार, श्रीअन्न अनाज वाली दूसरी महत्वपूर्ण फसल है। भारत में ज्वार की खेती मुख्य रूप से बरसात *(खरीफ)* के मौसम में वर्षा-आधारित फसल के रूप में की जाती है। भारत में, महाराष्ट्र सबसे बड़ा ज्वार उगाने वाला और उत्पादक राज्य है इसके बाद में कर्नाटक, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, राजस्थान एवं तेलंगाना आते हैं। इसे अस्सी के दशक में 'ग्रेट मिलेट' के रूप में जाना जाता था क्योंकि उस समय इसकी खेती 18 मिलियन हैक्टेयर से अधिक क्षेत्र में की जाती थी। ज्वार का क्षेत्रफल 1970 में 18.6 मिलियन हैक्टेयर से घटकर 2023 में 3.8 मिलियन हैक्टेयर रह गया; कुल उत्पादन भी 9.72 मिलियन टन से घटकर 4.2 मिलियन टन हो गया, लेकिन इसी अवधि के दौरान उत्पादकता 522 कि.ग्रा./हैक्टेयर से बढ़कर 1110 कि.ग्रा./हैक्टेयर हो गई, जिसका मुख्य कारण किसानों द्वारा उन्नत उत्पादन तकनीकों को अपनाना है।

जलवायु

ज्वार गर्म मौसम की फसल है जिसके अच्छे अंकुरण के लिए उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। ज्वार की खेती समुद्रतल से लगभग 1500 मीटर तक की ऊंचाई वाले सभी क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है। ज्वार के अंकुरण के लिए न्यूनतम तापमान 9-10^0 सेंटीग्रेड उपयुक्त होता है। पौधों की बढ़वार के लिए सर्वोत्तम औसत तापमान 26-30^0 सेंटीग्रेड पाया गया है। फसल में भुट्टे निकलते समय 30^0 सेंटीग्रेड से अधिक तापमान फसल के लिए हानिकारक होता है क्योंकि उच्च तापमान में परागण सूख जाने के कारण दाने नहीं बनते हैं जिससे ज्वार के उत्पादन में भारी कमी होती है। ज्वार की फसल कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है क्योंकि इसमें सूखे की दशा को सहन करने की अधिक क्षमता होती है। लगभग 600-1000 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र ज्वार की खेती के लिए सबसे अनुकूल होते हैं।



फसल प्रणाली

अन्तरसस्य फसल प्रणाली के लिए ज्वार एक उत्तम फसल है क्योंकि इसकी बुवाई 45-50 से. मी. पर कतारों में की जाती है जिनके बीच में दलहन एवं तिलहन की फसल आसानी से ली जा सकती है। ज्वार के साथ दलहन एवं तिलहन की फसल लेने से न केवल उत्पादन एवं आय में वृध्दि होती है बल्कि मृदा उर्वरता में भी निरंतर बढ़ोतरी होती है जिससे फसल उत्पादन में टिकाऊपन आता है। कुछ प्रमुख अन्तर/मिश्रित फसल पद्धतियां निम्नलिखित हैं:

ज्वार + अरहर (2:1/2:2/3:3)

ज्वार + उड़द / मूंग (2:2)

ज्वार + लोबिया / ग्वार (2:2)

ज्वार + सोयाबीन (2:4/3:6)

ज्वार + मूंगफली (2:1/2:4/3:3)

ज्वार + तिल (2:2)

ज्वार + अरंडी (1:1/2:2)

वर्षा आधारित या कम सिंचित वाले क्षेत्रों में उचित मृदा नमी संरक्षण तकनीक अपनाकर ज्वार के बाद चना या सरसों की खेती आसानी से की जा सकती है, जबकि सिंचित इलाकों में ज्वार-गेहूं अनुक्रम अच्छी पैदावार देता है । देश के विभिन्न क्षेत्रों में ज्वार आधारित कुछ प्रमुख फसल चक्र निम्नलिखित हैं:

उत्तरी भारतः

ज्वार – गेहूं / जौ

ज्वार – चना / मटर / मसूर

ज्वार – सरसों

ज्वार – बरसीम

ज्वार – आलू – मूंग

ज्वार – आलू – गेहूं

ज्वार – लाही – बसंतकालीन गन्ना

दक्षिणी भारत

मूंगफली – ज्वार – अरहर

ज्वार – धान – धान

ज्वार – कपास

कपास - ज्वार – चना

ज्वार – मंडुआ – तंबाकू




अन्तरसस्य फसल प्रणाली

मृदा

ज्वार की खेती देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की मृदाओं में की जाती है परंतु अच्छे जल निकास वाली चिकनी दोमट या दोमट मृदा जिसका पीएच मान 6.0-8.5 के बीच हो इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम होती है। मध्य भारत की कपास की काली मृदा ज्वार की खेती के लिए बहुत उपयुक्त समझी जाती हैं। ज्वार की फसल हल्की लवणीय या क्षारीय मृदा में भी आसानी से उगाई जा सकती है।

उन्नत किस्में

किस्मों के चयन का उद्देश्य पौधे के सबसे महत्वपूर्ण विकास चरणों, जैसे कि फूल आने और बीज बनने, के दौरान सूखे की अवधि से बचने के द्वारा जोखिम को कम करके अधिक उत्पादन प्राप्त करना है। रोग और कीट प्रतिरोध, फसल का गिरना और हेड/बाली की स्थिति जैसी कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं जिन्हें किस्म का चयन करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। ज्वार की उन्नत किस्में अपेक्षाकृत बौनी होती हैं और उनमें अधिक उपज देने की क्षमता होती है। ये किस्में उपयुक्त मात्रा में खाद, उर्वरक एवं पानी के प्रयोग से अच्छी उपज देती हैं और गिरती भी नहीं हैं। अधिकांश नई किस्में पकने में कम समय लेती हैं। ज्वार मुख्य रूप से दाने एवं हरे चारे के लिए उगाई जाती है। ज्वार की उन्नत संकर एवं संकुल किस्में सारणी 1 से 3 में संकलित की गई हैं:

सारणी 1. दाने के लिए ज्वार की उन्नत किस्में

राज्य	*खरीफ* ज्वार		*रबी* ज्वार	
	संकर	संकुल	संकर	संकुल
महाराष्ट्र	सीएसएच 14, सीएसएच 9, सीएसएच 16, सीएसएच 18, सीएसएच 23, सीएसएच 25, सीएसएच 30, सीएसएच 34, सीएसएच 35, सीएसएच 45	सीएसवी 13, सीएसवी 15, एसपीवी 699, एसपीवी 462, पीवीके 400, पीवीके 801, सीएसवी 50	सीएसएच 15आर, सीएसएच 19आर	सीएसवी 83, सीएसवी 143, फुले यशोदा, फुले वसुधा, परभणी मोती, स्वाति, एम 35-1

राज्य	*खरीफ* ज्वार		*रबी* ज्वार	
	संकर	संकुल	संकर	संकुल
आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना	सीएसएच 14, सीएसएच 23, सीएसएच 25, सीएसएच 34, सीएसएच 35, सीएसएच 48	सीएसवी 17, सीएसवी 20, सी एसवी 15, सीएसवी 50	सीएसएच 12आर, सीएसएच 14आर, सीएसएच 19आर	सीएसवी216आर, एसपीवी 462
कर्नाटक	सीएसएच 14, सीएसएच 17, सीएसएच 18, सीएसएच 25, सीएसएच 30, सीएसएच 35, सीएसएच 45, सीएसएच 48	एसवी 1066, सीएसवी 15, एसपीवी 462, सीएसवी 50	डीएसएच 4, सीएसएच 15आर	फुले यशोदा, सीएसवी 22, सीएसवी 18
तमिल नाडु	सीएसएच 6, सीएसएच 11, सीएसएच 14, सीएसएच 48	सीएसवी 17, को-24, को-25, को-26	-	-
मध्य प्रदेश	सीएसएच 11, सीएसएच 16, सीएसएच 17, सीएसएच 18, सीएसएच 34, सीएसएच 35, सी एस एच 48	जेजे 741, जेजे 938, जेजे 1041, एसपीवी 235	-	-
गुजरात	सीएसएच 9, सीएसएच 13, सीएसएच 18, एसपीएच 468, सीएसएच 30, सीएसएच 35, सीएसएच 48	सीएसवी 15, एसपीवी 462, जीजे 36, जीजे 37, जीजे 40, जीजे 41	-	-
राजस्थान	सीएसएच 14, सीएसएच 16, सीएसएच 23, सीएसएच 34, सीएसएच 35, सीएसएच 45, सीएसएच 48	एस पी वी 96, सी एस वी 15, प्रताप ज्वार	-	-
उत्तर प्रदेश	सीएसएच 13, सीएसएच 18, सीएसएच 16	सीएसवी 10, सीएसवी 11, सीएसवी 15	-	-







ज्वार की उन्नत किस्में



सारणी 2. जलवायु परिवर्तन प्रतिरोधी ज्वार की शीघ्र पकने वाली संकर एवं संकुल किस्में

किस्म	विशेषताएं
सीएसवी 17	पकने की अवधि: 95-98 दिन, जल्दी पकने वाली, औसत खाद्यान्न उपज: 2.4-2.5 टन/हैक्टेयर, चारा उपज: 6.5-7.0 टन/हैक्टेयर।
सीएसएच 16	पकने की अवधि: 110 दिन, औसत खाद्यान्न उपज: 4.0-4.5 टन /हैक्टेयर, चारा उपज: 9.0-9.5 टन/ हैक्टेयर, ग्रेन मोल्ड बीमारी प्रतिरोधी।
सीएसएच 23	पकने की अवधि: 105 दिन, जल्दी पकने वाली, औसत खाद्यान्न उपज: 4.0-4.2 टन/हैक्टेयर, चारा उपज: 8.5-9.0 टन/हैक्टेयर।
सीएसएच 27	पकने की अवधि: 104 दिन, औसत खाद्यान्न उपज: 3.8-4.0 टन/हैक्टेयर, चारा उपज: 13.4-13.6 टन/हैक्टेयर, ग्रेन मोल्ड बीमारी प्रतिरोधी।
सीएसएच 30	पकने की अवधि: 103 दिन, जल्दी पकने वाली, औसत खाद्यान्न उपज: 4.3 टन/हैक्टेयर, चारा उपज: 14.0 टन/हैक्टेयर।
फुले अनुराधा	पकने की अवधि: 105-110 दिन, औसत खाद्यान्न उपज: 3.0-3.5 टन/हैक्टेयर, चारा उपज: 9.0-10.0 टन/हैक्टेयर, जल्दी पकने वाली सूखा प्रतिरोधक किस्म।

सारणी 3. हरे चारे के लिए उपयुक्त ज्वार की किस्में

प्रकार	किस्म
एक बार कटाई हेतु	पूसा चरी 6, पूसा चरी 9, राजस्थान चरी 1, राजस्थान चरी 2, हरियाणा चरी 6, जवाहर चरी 6, यूपी चरी 1, यूपी चरी 2, सीएसवी 30 एफ, सीएसवी 32एफ।
अनेक बार कटाई हेतु	पूसा चरी 23, एमपी चरी, मीठी सूडान, जवाहर चरी 69, हरा सोना, पंजाब सुडेक्स, पीसीएच 106, सीएसवी 33एमएफ।
मीठी ज्वार	सीएसएच 22एसएस, एसएसवी 84, एसएसवी 74, सीएसवी 19एसएस, सीएसवी 24एसएस।

खेत की तैयारी

ज्वार की फसल की बुवाई हेतु खेत में पर्याप्त नमी तथा खरपतवार मुक्त बीजशैय्या होनी चाहिए। गर्मी के दिनों में एक गहरी जुताई कर 3-4 बार हैरो या कल्टीवेटर से जुताई करनी चाहिए। खेत में मेड़ें बनाकर वर्षा के पानी को संरक्षित करना चाहिए जो की ज्वार की फसल में बेहतर पैदावार करने में सहायक होता है । बुवाई पूर्व 8-10 टन/है. गोबर की खाद खेत में मिलाएं।

बीज एवं बुवाई

उत्तरी भारत में ज्वार की बुआई का उचित समय जुलाई का प्रथम सप्ताह है। देश के दक्षिणी राज्यों जैसेः महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु जहां ज्वार *रबी* के मौसम में उगाई जाती है, बुआई 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर के मध्य करना अच्छा रहता है। बीज की बुआई कतारों में की जाती है जिसमें कतार से कतार की दूरी 45 सें.मी. एवं

पौधे से पौधे की दूरी 12 सें.मी. रखी जाती है । हरे चारे वाली फसल की बुवाई में कतार से कतार की दूरी 30 सें.मी. रखी जाती है। ज्वार की खेती संरक्षित कृषि के सिद्धांतों को अपनाकर कम से कम जुताई या शून्य जुताई में भी आसानी से की जा सकती है जिससे ना केवल उत्पादन लागत में कमी आती है बल्कि मृदा नमी संरक्षित कर सूखा की परिस्तिथियों से भी आसानी निपटा जा सकता है।

ज्वार की अधिक पैदावार हेतु 1.8–2.0 लाख पौधे प्रति हैक्टेयर होने चाहिए जिसके लिए 8–10 कि.ग्रा./है. बीज की जरुरत होती है वहीं हरे चारे वाली फसल के लिए 25–40 कि.ग्रा./है. बीज के आकार के अनुसार बीज की जरुरत होती है। बुवाई से पूर्व फसल को मृदाजनित बीमारियों एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने हेतु बीज को 300 मैश 4 ग्रा. सल्फर चूरा और एजोटोबैक्टर या एज़ोस्पेरिलम व पीएसबी 25 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज को उपचारित करना चाहिए।



कवकनाशी से बीजोपचार

पोषक तत्व प्रबंधन

फसल की उचित बढ़वार के लिए समुचित पोषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता होती है। ज्वार में खाद एवं उर्वरकों का उपयोग मृदा परीक्षण की सिपारिशों के अनुसार करना चाहिए। यदि जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट आदि उपलब्ध हों तो 10 टन प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के 15-20 दिन पूर्व खेत में समान रूप से बिखेर कर भूमि में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। जैविक खादों के प्रयोग से भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है तथा भूमि की जलधारण क्षमता भी बढ़ती है। सिंचित परिस्थितियों में ज्वार की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 100-120 कि.ग्रा.





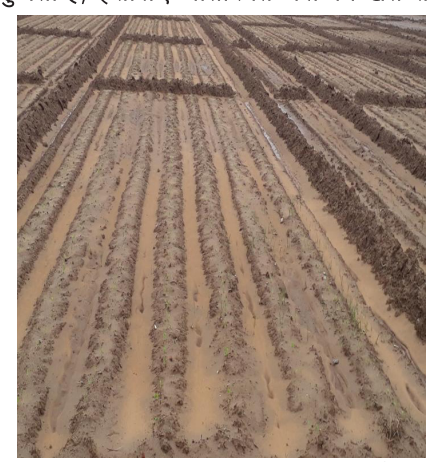
समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन: गोबर की खाद एवं उर्वरक उपयोग

नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) तथा 40-50 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता पड़ती है जबकि असिंचित (बारानी) परिस्तिथियों में 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन , 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) तथा 30-40 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है।

सिंचित दशा में नाइट्रोजन की आधी मात्रा एवं फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय फर्टी-सीड-ड्रिल द्वारा भूमि में डालें। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा बुवाई के 30-35 दिन बाद खड़ी फसल में छिड़क दें परंतु ध्यान रहे की उर्वरक पौधों के आस-पास ही पड़ना चाहिए। असिंचित परिस्थितियों में उर्वरकों की सभी मात्रा बुवाई के समय ही फर्टी-सीड-ड्रिल द्वारा भूमि में डालनी चाहिए। जरुरत पड़ने पर असिंचित (बारानी) दशा में 2 प्रतिशत यूरिया का 1000 लिटर पानी में घोल बनाकर खड़ी फसल में छिड़काव करना अत्यंत लाभप्रद पाया गया है। मुख्य पोषक तत्वों के अतिरिक्त यदि भूमि में सूक्ष्म तत्वों की कमी हो तो सूक्ष्म तत्वों का छिड़काव करना भी आवश्यक होता है अन्यथा ज्वार की उपज पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। सूक्ष्म पोषक तत्वों में लोहा तत्व तथा जिंक (जस्ता) ज्वार के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इन तत्वों की कमी पूरा करने के लिए जिंक का 0.2 प्रतिशत तथा लोहा तत्व का 0.15 प्रतिशत घोल का पर्णीय छिड़काव बुवाई के 35-40 दिन बाद करना चाहिए।

जल प्रबंधन

सामान्यतः ज्वार की खेती असिंचित क्षेत्रों में की जाती है परंतु जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहां पर *खरीफ* ऋतु में वर्षा न होने की दशा में सिंचाई कर देनी चाहिए। ज्वार की फसल में पौधों की वृद्धि, फूल तथा दाना बनते समय पानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है। अतः इन अवस्थाओं पर सिंचाई करना आवश्यक होता है। ज्वार की फसल के लिए सिंचाई देने की चार क्रान्तिक अवस्थाएं हैं - प्रारंभिक बीज से पौधे की अवस्था, भुट्टे निकलने से पहले, भुट्टे निकलते समय तथा भुट्टों में दाना बनने की अवस्थायें। इन अवस्थाओं में पानी का अभाव होने पर ज्वार की वृद्धि एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वर्षा आधारित ज्वार की अधिक पैदावार के लिए ग्रीष्म ऋतु में गहरी जुताई खेत में कम्पार्टमेंट की तरह क्यारियां, मेंड़ पर बुवाई इत्यादि से मृदा नमी संरक्षित करें। सिंचाई के साथ-साथ ज्वार की फसल में उचित जल निकास की भी आवश्यकता होती है। ज्वार की फसल में यदि देर तक पानी खड़ा रहे तो फसल को नुकसान पहुंचता है, इसलिए अतिरिक्त जल को खेत से तुरंत निकाल देना चाहिए।




मेंड़ पर बुवाई से उचित जल निकास

खरपतवार प्रबंधन

ज्वार की फसल में प्रमुख रूप से सांठी, कनकुआ (केनी), सांवा घाय, मोथा, मकरा, और दूब घास इत्यादि खरपतवार आते हैं। ज्वार की अच्छी उपज लेने के लिए निराई-गुड़ाई करना अति आवश्यक है। निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार होता है तथा भूमि में नमी भी संरक्षित रहती है। बुवाई के लगभग 3 सप्ताह बाद बैल चालित ब्लेड हैरो या हस्त चालित व्हील हो से एक निराई-गुड़ाई कर देनी चाहिए। यदि किसी कारणवश निराई-गुड़ाई संभव न हो तो बुवाई के तुरंत बाद 'एट्राजिन' नामक खरपतवारनाशी की 0.75-1.0 कि.ग्रा. मात्रा का 700-800 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। ज्वार में परजीवी खरपतवार स्ट्राइगा की समस्या होने पर स्ट्राइगा की संख्या कम होने पर हाथ से उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। यदि स्ट्राइगा की समस्या बहुत अधिक है तो 2,4-डी. सोडियम साल्ट का एक कि.ग्रा. सक्रिय तत्व का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।





प्रमुख खरपतवार केनी, सांठी एवं मोथा

सारणी 4. ज्वार के लिए अनुशंसित शाकनाशी

खरपतवारनाशी	सक्रिय तत्व मात्रा (कि.ग्रा. /है.)	उपयोग का समय	खरपतवार नियंत्रण	टिप्पणी
एट्राज़िन	0.75-1.00	बुवाई के 1-2 दिन बाद या प्रारंभिक अंकुरण के बाद	ब्रॉड-स्पेक्ट्रम खरपतवार नियंत्रण। कुछ घास सहिष्णु हैं	केवल एकमात्र फसल लिए। एक्रेक्ने, पैरागास (*ब्रैचियारिया रेप्टन्स*) और कन्शीरा (*कॉमेलिना बेंघालेंसिस*) नियंत्रण नहीं करता
एलाक्लोर	1.50-2.00	बुवाई के 1-2 दिन बाद या अंकुरण पूर्व	प्रभावी नियंत्रण घास	अंतर्फसल के लिए उपयुक्त
मेटालोक्लोर	1.00-1.50	बुवाई के 1-2 दिन बाद या अंकुरण पूर्व	प्रभावी नियंत्रण घास	अंतर्फसल के लिए उपयुक्त
2,4-डी	0.50–0.75	रोपण के 4-6 सप्ताह के बीच	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार का प्रभावी नियंत्रण	केवल एकमात्र खरपतवारनाशी खड़ी फसल के लिए। अंकुरण पूर्व शाकनाशियों के क्रमिक अनुप्रयोग के लिए अच्छा विकल्प

एट्राज़िन + पेंडीमेथलीन	0.75 + 0.75	बुवाई के 1-2 दिन बाद या अंकुरण पूर्व	ब्रॉड-स्पेक्ट्रम खरपतवार नियंत्रण।	केवल एकमात्र फसल के लिए
एट्राज़िन + एलाक्लोर	0.75 + 0.75	बुवाई के 1-2 दिन बाद या अंकुरण पूर्व	ब्रॉड-स्पेक्ट्रम खरपतवार नियंत्रण।	केवल एकमात्र फसल के लिए
एट्राज़िन + मेटालोक्लोर	0.75 + 0.50	बुवाई के 1-2 दिन बाद या अंकुरण पूर्व	ब्रॉड-स्पेक्ट्रम खरपतवार नियंत्रण।	केवल एकमात्र फसल के लिए

कीट प्रबंधन

ज्वार की फसल को कीटों एवं रोगाणुओं द्वारा काफी नुकसान होता है, अतः अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए सही समय पर इनकी रोकथाम करना आवश्यक है। ज्वार में मुख रूप से प्ररोह मक्खी, तना छेदक, पर्ण फुदका, तना मक्खी, तना एवं भुट्टा बग, और माहू इत्यादि कीट नुकसान पहुंचाते हैं। ज्वार की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले मुख्य कीट और उनका नियंत्रण इस प्रकार है:

1. तना छेदक: इसकी गिडार अथवा सूंडियां छोटे पौधों की गोफ को काट देती हैं जिससे गोफ सूख जाती है। इसका प्रभाव बुवाई के 15 दिन बाद से आरंभ होकर फसल में भुट्टे आने के समय तक होता है। पौधे की बढ़वार के साथ ही ये तने में सुरंग सी बना लेती हैं और अंदर ही अंदर तने के मुलायम हिस्सों को खाती हैं जिसके परिणामस्वरूप पौधे के वृद्धि भाग की मृत्यु हो जाती है जिसे 'डैड-हर्टस' के नाम से जाना जाता है। इसकी रोकथाम के लिए बुवाई के 25-35 दिनों बाद कार्बोफ्युरॉन (3 सीजी) या कार्बारिल 3 जी दानेदार कीटनाशक 8-12 कि.ग्रा. प्रति है. की दर से डालना चाहिए तथा 10 दिनों के बाद दूसरा बुरकाव इसी मात्रा में पौधों की गोफ में करना चाहिए। एक कि.ग्रा. बीज को 3 ग्रा. थाइमेथॉक्जिम 70 डब्लू.एस. से उपचारित करके बुवाई करने से तना छेदक का प्रकोप कम होता है। बुवाई के समय कूड़ों में 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से कार्बोफ्युरॉन (3 सीजी) का मृदा उपयोग करने से भी तना छेदक नियंत्रित किया जा सकता है। जैविक कीटनाशक जैसे *बैसिलस थुरेन्गोनेसिस* ज्वार में तना छेदक के नुकसान को काफी कम किया जा सकता है। ज्वार के साथ लोबिया की अन्तःफसल करने से भी तना छेदक कीट फसल को बहुत कम नुकसान पहुंचता है।

2. तना मक्खी: यह ज्वार का एक प्रमुख कीट है। इसका प्रकोप पौधों के जमाव के लगभग 7 दिन बाद से 30 दिन तक होता है। कीट की इल्लियां उगते हुए पौधों की गोफ को काट देती हैं जिससे शुरू की अवस्था में ही पौधे सूख जाते हैं। कुछ पौधों की गोफ सूख जाने के बाद भी कल्ले निकलते हैं पर उनमें भुट्टे देर से आते हैं और उनका आकार भी छोटा होता है। तना मक्खी के प्रकोप से फसल को बचाने के लिए ज्वार की अगेती फसल लेनी चाहिए। एक कि.ग्रा. बीज को 14 ग्रा. इमिडाक्लोप्रिड अथवा 3 ग्रा. थाइमेथॉक्जिम 70 डब्लू.एस. या 100 ग्रा. फ्युराडान 50 एस.पी. से उपचारित करके बुवाई करे। इसके नियंत्रण के लिए कार्बोफ्युरॉन 3 सीजी बुवाई के समय 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से कूंड़ों में डालना चाहिए। यह कीटनाशक पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषित होकर पौधों में पहुंचता है और ऐसे पौधों को खाने के

बाद गिडारें मर जाती हैं। ज्वार + लोबिया/ अरहर की अन्तः फसल करने से फसल को बहुत कम नुकसान पहुंचता है।

3. ज्वार का मिज: यह कीट ज्वार में भुट्टे निकलने के समय फसल को नुकसान पहुंचाता है। कीट की सूंडी विकासशील अनाज के दानों को खाकर दाने के स्थान पर अपना प्यूपा बनाते हैं। प्यूपा, पुष्पक की नोक से जुड़े हुए सफेद प्यूपल के रूप में दिखाई देता है जो एक विशिष्ट लक्षण है। यह देश के दक्षिणी राज्यों -महाराष्ट्र, कर्नाटक व तमिलनाडु में ज्वार की फसल को हानि पहुंचाने वाला मुख्य कीट है। इसकी रोकथाम के लिए कार्बारिल 50 डब्ल्यू पी या कार्बारिल 3 डी कीटनाशक का ज्वार में भुट्टे निकलते समय 4-5 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए। फसल में 50 प्रतिशत फूल आने और दाने बनने पर कार्बारिल 10% धूल 20 से 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बुरकाव करना चाहिए। मैलाथियान 5% या कार्बारिल 10%, क्विनोलफोस 5% धूल 12 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बुरकाव भी प्रभावी होता है। ज्वार की मिज की समस्या को पछेती बुवाई तथा परजीवी एवं परभक्षियों के उपयोग से भी कम की जा सकता है।

4. शूट बग (पैरेग्रिनुस मैडिस): शूट बग ज्वार का बहुत कम महत्त्व का कीट है जो यदाकदा ही आता है, परंतु अनुकूल परिस्थितियों में यह कई पीढ़ियां पैदा करता है और ज्वार को भारी नुकसान पहुंचाता है। वयस्क और शिशु दोनों ही रस चूसते हैं जिसके परिणामस्वरूप पौधा पीला पड़ जाता है और सूख जाता है। वानस्पतिक अवस्था में भारी संक्रमण के परिणामस्वरूप ऊपरी पत्तियां मुड़ सकती हैं और बाली के गठन और उद्भव को रोकता है। कार्बारिल 3 जी को 8 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से पत्तियों के घेरे में डालने से कीट के प्रकोप को प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है। इसी प्रकार 5 प्रतिशत नीम बीज गिरी सस्पेंशन का छिड़काव एक विकर्षक के रूप में कार्य करता है। विटेक्स की पत्तियों के 5 प्रतिशत अर्क का छिड़काव करने से शिशु और कीट वयस्कों का नियंत्रण हो जाता है।

5. हेडबग: हेडबग पुष्पगुच्छ पर आक्रमण करता है और मुख्य रूप से विकसित हो रहे बीजों को खाता है और कुछ हद तक पुष्पगुच्छ के अन्य भागों को खाता है और दाने के वजन, बीज की गुणवत्ता और अंकुरण को कम करके आर्थिक क्षति पहुंचाता है। कीट प्रभावित पुष्पगुच्छों में अनाज की फफूंद क्षति भी गंभीर होती है। कार्बारिल 50 एसपी को 3.0 कि.ग्रा./हैक्टेयर की दर से छिड़काव के रूप में या कार्बारिल 5 डी को 20 कि.ग्रा./हैक्टेयर दर से धूल के रूप में पुष्पगुच्छों पर खिलने से पहले और एक बार दूधिया अवस्था में लगाने से संक्रमण को प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है।

6. पर्ण फुदका (पाइरिला): इस कीट का आक्रमण बे-मौसम व पेड़ी ज्वार में अधिक पाया गया है। यह कीट पौधों की पत्तियों का रस चूसकर नुकसान पहुंचाता है जिससे पौधों का हरापन कम हो जाता है और पौधे सूख जाते हैं। पायरिला के वयस्क और शिशु, दोनों ही पत्तियों के नीचे से रस चूसते हैं लेकिन अधिकांश क्षति शिशुओं द्वारा होती है। इस कीट के खाने के स्थान पीले हो जाते हैं और रस की हानि के साथ पत्तियां मुरझा जाती हैं, जिससे पौधे की वृद्धि रुक जाती है। पाइरिला द्वारा उत्पादित शहद के रस पर कालिखयुक्त फफूंद उगती है और इससे प्रकाश संश्लेषण कम हो जाता है। ज्वार के दानों की उपज में इस कीट से लगभग 80 प्रतिशत हानि का अनुमान लगाया गया है। इस कीट का नियंत्रण सामान्यतया स्वयं ही हो जाता है।

7. ज्वार का माइट: यह बहुत ही छोटा कीट होता है जो पत्तियों की निचली सतह पर जाले बुनकर उन्हीं के अंदर रहकर पत्तियों से रस चूसता है। ग्रसित पत्ती लाल रंग की हो जाती हैं और बाद में सूख जाती है। इसकी रोकथाम अन्य कीटों



की रोकथाम के साथ स्वतः ही हो जाती है। केलथेन 35 ईसी या डाइमेथोएट 35 ईसी का 1 लिटर/हैक्टेयर की दर से 500 लिटर पानी में छिड़काव करना माइट को नियंत्रित करने में प्रभावी पाया गया है।

8. बालदार सूंडी: यह कीट विभिन्न फसलों को नुकसान पहुंचाता है। इस कीट के शरीर पर घने बाल होने के कारण इस कीट को बालदार सूंडी कहा जाता है। इस कीट की छोटी-छोटी सूंडी पौधे की मुलायम पत्तियों को खा जाती हैं जिससे पौधे की पत्तियों पर केवल शिरायें ही शेष बचती हैं। इस कीट के नियंत्रण के लिए फोलीडोल 2 प्रतिशत धूल का 25-30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर खड़ी फसल में धूलन करना चाहिए।

9. माहू (एफिड): इस कीट के शिशु एवं वयस्क पौधों का रस चूसते रहते हैं जिससे पौधों की पत्तियों के किनारे पर पीली-नीली धारियां दिखाई पड़ती हैं। इस कीट के प्रकोप से तरल द्रव बनने लगता है जिससे फसल पर फंफूदी का आक्रमण होने लगता है और दाने की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसकी रोकथाम के लिए डायमैथोएट 30 ई.सी. की 500 मि.लिटर मात्रा को 500-600 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

ज्वार की फसल को भुट्टे लगने के समय से कटाई तक चिड़ियों से भी बहुत नुकसान पहुंचता है। अतः फसल को नुकसान से बचाने के लिए चिड़ियों से रखवाली करना भी बहुत आवश्यक है।

भंडारण कीट: कटाई के समय, ज्वार के अनाज में मौसम और इसकी स्थिति के आधार पर 20-28% नमी होती है। भंडारण के दौरान अनाज में उच्च नमी भंडारण कीटों के हमले के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। ज्वार के दानों पर मुख्य रूप से चावल की घुन *(सिटोफिलस ओराइजी)*, अनाज छेदक *(राइजोपर्था डोमिनिका)* और एंगौमोइस अनाज कीट *(सिटोट्रोगा अनाजेल)* का हमला होता है। अनाज भंडारण से पहले नमी की मात्रा को 10-12% तक कम करने के लिए धूप सेकने और यांत्रिक ड्रायर का उपयोग करने का विकल्प चुना जा सकता है। कीटों के हमले की तीव्रता के आधार पर भंडारित अनाज का धूम्रीकरण या तो शेड धूम्रीकरण या कवर धूम्रीकरण वांछनीय है।

रोग प्रबंधन

ज्वार में पर्ण एवं पुष्पगुच्छ संबंधी एक दर्जन से अधिक रोग होते हैं जिनमें से कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं जो इस प्रकार हैं:

1. मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू): रोग के लक्षण पौधों की ऊपरी नई पत्तियों पर पहले दिखाई पड़ते हैं जिसमें पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंग का चूर्ण जमा हो जाता है। रोगग्रसित पत्तियां पीली पड़कर झड़ जाती हैं। यदि रोग का आक्रमण फसल की प्रारंभिक अवस्था में हो जाता है तो पौधों की वृद्धि रूक जाती है तथा पौधों में भुट्टे नहीं निकलते। रोग की रोकथाम के लिए रोगरोधी प्रजातियां उगानी चाहिए, रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए। रोपण से पहले ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई रोगज़नक़ ओस्पोर्स को नष्ट करने के लिए बहुत अच्छी होती है। बीज को बुवाई से पूर्व एपरान-35 एस डी या रिडोमील एम जेड-72 या मेटलैक्सिल से 2.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए तथा फसल पर रिडोमिल (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

2. तना-विगलन (चार कोल विगलन): ज्वार में सबसे महत्वपूर्ण तना-विगलन रोग या चारकोल सड़न है, जो सर्वव्यापी और मिट्टी और अवशेष-जनित कवक, *मैक्रोफोमिना फेजोलिना* (टैसी) *गोइड* के कारण होता है। इस रोग का प्रकोप



तमिलनाडु व महाराष्ट्र में *रबी* में उगाई जाने वाली ज्वार की फसल पर अधिक देखा गया है। यदि रोग का आक्रमण छोटी अवस्था में होता है तो पौधा सूख जाता है। बड़े पौधों पर इसका प्रभाव होने पर भुट्टे छोटे रह जाते हैं तथा समय से पहले ही पक जाते हैं; तना कमजोर और खोखला हो जाता है और अक्सर पौधे गिर जाते हैं। तने के निचले भाग के गूदे में कवक के काले रंग की बढ़वार दिखाई देती है क्योंकि यह रोग मृदा द्वारा फैलता है। इस रोग के प्रभावी नियंत्रण के लिए फसल चक्र व अन्तः फसलीकरण प्रणाली अपनानी चाहिए। फसल में नाइट्रोजन का कम प्रयोग करना चाहिए तथा भूमि में नमी संरक्षण की विधियां अपनानी चाहिए।

3. ज्वार का किट्ट: यह भी एक कवक जनित रोग है। इस रोग का असर पहले पौधे की निचली पत्तियों पर दिखाई पड़ता है और बाद में ऊपर की पत्तियां पर भी फैल जाता है। पत्तियों पर लाल या बैंगनी रंग के धब्बे पड़ जाते हैं और पत्तियां समय से पहले ही सूख जाती हैं। किट्ट रोग की रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्में, स्वच्छ बीज, फसल चक्र और पौधों के अवशेष को नष्ट करना चाहिए और पौधों पर रोग के लक्षण दिखाई देने पर डाइथेन एम-45 (0.2 प्रतिशत) नामक कवकनाशी का 10 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

4. जड़ विगलन: ज्वार की फसल में यह रोग कवक द्वारा फैलता है। यह बीमारी मृदा तथा बीज दोनों के द्वारा फैलती है, परंतु मृदा द्वारा यह बीमारी मुख्य रूप से फैलती है। फसल में बीमारी के लक्षण बुवाई के 30-35 दिन बाद दिखाई देते हैं। रोगग्रसित पौधों की बढ़वार रुक जाती है, पत्तियां मुड़ जाती हैं तथा पुरानी पत्तियों का ऊपरी भाग पीला पड़ जाता है। बीमारी का प्रकोप अधिक होने पर पौधों की संपूर्ण पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और पौधे मर जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए बीजों को बोने से पूर्व किसी कवकनाशी रसायन जैसे थिरम या केप्टान @ 2.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए तथा ज्वार की रोगरोधी प्रजातियां उगानी चाहिए।

5. ऐन्थ्रेक्नोज़: यह बीमारी *कोलेटोट्रिकम सबलिनोलम* नामक कवक से होती है। इस रोग का विशिष्ट लक्षण मध्य शिरा पर काले धब्बों से युक्त छोटे गोलाकार घाव हैं। इस बीमारी को साफ बीजों के उपयोग, पौधों के अवशेषों को नष्ट करने, फसल चक्र, सूडान घास और जॉनसन घास जैसे मेजबान खरपतवार पौधों को हटाने से रोकथाम की जा सकती है।

6. दाने का कंड (स्मट): यह ज्वार का सबसे हानिकारक कवक जनित रोग है। ज्वार में मुख्य रूप से तीन प्रकार के कंड लगते हैं जिसमें श्लथ कंड *(स्पोरिसोरियम क्रुएन्ता)*, कवर्ड स्मट *(स्पोरिसोरियम सोरघी)*, हेड स्मट *(स्पोरिसोरियम रिलियनम)* एवं लॉन्ग कण्ड *(टोलीपोस्पोरियम एह्रेनबर्गी)* होते हैं। इसका प्रकोप पौधों में भुट्टे निकलते समय होता है। यह मुख्यतः बीज द्वारा फैलता है। इस कवक के बीजाणु अंकुरण के समय जड़ों द्वारा पौधों में प्रवेश कर जाते हैं। पौधों में भुट्टे आने पर दानों की जगह कवक के काले बीजाणु भर जाते हैं। बीजाणु बाहर से एक कड़ी झिल्लीदार परत से ढके रहते हैं जिसके फटने पर वे बाहर आकर फैल जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए स्मट सोरी से मुक्त साफ बीजों का उपयोग करना चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए बीज को किसी कवकनाशी दवा जैसे-केप्टान या वीटावैक्स पावर से 2.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करें।

7. अर्गट: संकर ज्वार में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। इस बीमारी के बीजाणु हवा द्वारा फैलते हैं तथा बीमारी का प्रकोप फसल में फूल आने के समय होता है। पुष्प शाखा पर स्थित स्पाइकिल से हल्के गुलाबी रंग का गाढ़ा व चिपचिपा शहद जैसा पदार्थ निकलता है जो मनुष्य तथा पशुओं दोनों के लिए हानिकारक होता है। अर्गट रोग से ग्रसित

भुट्टों को काटकर जला देना चाहिए। भुट्टों में दाना बनने की अवस्था पर थिरम (0.2 प्रतिशत) के 2-3 छिड़काव करके रोग के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। कवकनाशी "टिल्ट" (प्रोपिकोनाज़ोल) 25 ईसी का 0.2% की दर से फूल आने से लेकर 10 दिनों के अंतराल पर दो छिड़काव प्रभावी रूप से अर्गट रोग को नियंत्रित करते हैं।

8. अनाज की फफूंदी: यह ज्वार के दानों का एक जटिल रोग है जो कई कवकों के कारण होता है। प्रमुख कवक *"फ्यूजेरियम मोनिलिफोर्मे"* और *"कर्वुलेरिया लुनाटा"* हैं। संक्रमित दाने गुलाबी, सफेद या काले रंग की फफूंदयुक्त वृद्धि के साथ नरम, चूर्णयुक्त हो जाते हैं। अगेती किस्मों से बचें जिनके भारी बरसात के दिनों में परिपक्व होने की संभावना होती है। शारीरिक या पूर्ण परिपक्वता पर पुष्पगुच्छों की कटाई करें और यदि आवश्यक हो तो कृत्रिम सुखाने की व्यवस्था करें। अनाज के फफूंद को कम करने और बीज की गुणवत्ता में सुधार के लिए पुष्पगुच्छों पर "कैप्टान 0.30%" या "टिल्ट (प्रोपिकोनाज़ोल) 25 ईसी 0.20%" या बायोएजेंट *(फ्लोरोसेंट स्यूडोमोनास* 10^7 सीएफयू / मि.लि.) जैसे कवकनाशी का छिड़काव करें।



प्ररोह मक्खी एवं तना भेदक संक्रमण



मृदुरोमिल आसिता एवं अर्गट संक्रमण

कटाई एवं भंडारण

ज्वार की विभिन्न किस्में 100-130 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं। फसल पकने पर भुट्टे के हरे दाने सफेद या पीले रंग में बदल जाते हैं। भुट्टों में दानों के अंदर जब नमी घटकर 20 प्रतिशत तक रह जाए तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। संकर ज्वार में फसल पकने तक पौधे हरे बने रहते हैं। अतः खड़ी फसल से भुट्टों की कटाई हंसिया या दरांती से करके, फसल को हरे चारे के रूप में खिलाते रहते हैं। पौधों से भुट्टे अलग करने के बाद, पौधों को सुखाकर कड़वी (सूखे चारे) के रूप में रखा जाता है। कटाई के बाद ज्वार के भुट्टों को खलिहान में कम से कम एक सप्ताह तक धूप सूखने देना चाहिए। भुट्टों की मड़ाई डण्डों से पीटकर, बैलों द्वारा दांय चलाकर या थ्रेशर द्वारा कर लेते हैं। मड़ाई के तुरंत बाद ओसाई करके दानों को भूसे से अलग कर लिया जाता है। भंडारण करने से पहले दानों को धूप में अच्छे से सूखाकर लोहे की कोठी या गनी बैगों में भंडारित करते हैं। ज्वार के दानों को लंबे समय के लिए भंडारण करने के लिए दाने में नमी 13.5 प्रतिशत से कम होनी चाहिए।

उपज

ज्वार की खेती यदि उपरोक्त उन्नत सस्य विधियां अपनाकर की जाए तो संकर ज्वार से सिंचित दशा में औसतन 3.5 से 4.5 टन दाना और 10 से 12 टन कड़वी एवं असिंचित/ बारानी क्षेत्रों में 2.0 से 3.0 टन दाने तथा 7.0 से 8.0 टन कड़वी प्रति हैक्टेयर प्राप्त हो जाती है।

बाजरा



बाजरा [*पेनिसेटम ग्लॉकम* (एल.)], यह एशिया और अफ्रीका के शुष्क और अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में 32 मिलियन हैक्टेयर में व्यापक रूप से उगाया जाता है, जो वैश्विक बाजरा उत्पादन का लगभग आधा हिस्सा है। बाजरा आहार ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, और दुनिया के विकासशील देशों, विशेष रूप से अफ्रीका और एशिया में लोगों के लिए पोषण सुरक्षा प्रदान करता है। बाजरा लौह तत्व और जस्ता जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का एक उत्कृष्ट स्रोत है। बाजरा अधिकांशतः गरीब और छोटे भूमि धारकों का मुख्य भोजन है, साथ ही वर्षा आधारित क्षेत्रों में पशुओं के लिए चारा का उत्तम स्रोत है।

बाजरा उच्च प्रकाश संश्लेषक दक्षता और शुष्क पदार्थ उत्पादन क्षमता वाला सी$_4$ पौधा है। इसमें उत्पादन लागत की कम आवश्यकता होती है, तथा कम अवधि में परिपक्व हो जाता है। यह कम से कम इनपुट मे भी तेजी से बढ़ता है, यह उच्च प्रकाश संश्लेषक दक्षता, संतुलित पोषण प्रोफ़ाइल, अत्यधिक विपरीत जलवायु और जैविक तनाव के प्रति सहनशीलता रखता है। प्रतिकूल कृषि-जलवायु परिस्थितियां जहां चावल और गेहूं जीवित रहने में विफल रहते हैं, उगाया जा सकता है। साथ ही, यह सबसे कठिन परिस्थितियों जैसे मिट्टी की कम उर्वरता, उच्च मिट्टी पीएच, कम पानी, उच्च तापमान, मिट्टी की उच्च लवणता और अल्प वर्षा में भी अच्छी पैदावार देता है।

खेती और खपत

बाजरा की खेती मुख्य रूप से अफ्रीका और एशिया में 32 मिलियन हैक्टेयर से अधिक क्षेत्र में की जाती है। 1980 के दशक के बाद से भारत में बाजरा उत्पादन क्षेत्र अपेक्षाकृत स्थिर रहा, परंतु उच्च उपज वाले संकर किस्मों की



शुरूआत के साथ उत्पादन क्षेत्र लगातार बढ़ता गया। 2020-21 के दौरान 1391 कि.ग्रा/हैक्टेयर की उत्पादकता के साथ 7.41 मिलियन हैक्टेयर में बाजरा उगाया गया (2020-21 का तीसरा अग्रिम अनुमान), जबकि 2020-21 में 9.35 मिलियन टन के उत्पादन का अनुमान है (पहला अग्रिम अनुमान 2021-22, बाजरा विकास निदेशालय, 2021-22)।

बाजरा के प्रमुख उत्पादक राज्य राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, गुजरात और हरियाणा हैं, जिनका कुल उत्पादन में 90% योगदान है। कुल उत्पादन मे राजस्थान (45%), उत्तर प्रदेश (19%), हरियाणा (9%), गुजरात (9%), महाराष्ट्र (6%) और तमिलनाडु (2%) का योगदान रहता है। भारत में अधिकांश बाजरा बरसात (खरीफ) के मौसम (जून-सितंबर) में उगाया जाता है। इसकी खेती गर्मी के मौसम (फरवरी-मई) के दौरान भी गुजरात, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में की जाती है और बारिश के बाद रबी मौसम (नवंबर-फरवरी) के दौरान महाराष्ट्र, तमिलनाडु और गुजरात में छोटे पैमाने पर की जाती है।

एक जलवायु अनुकूल फसल

बाजरे को इसकी क्षमता से कम उपयोगिता दी गई है, एवं इसकी अत्यधिक पोषण क्षमता का दोहन नहीं किया गया है। मक्का या गेहूं जैसी फसलें जो कठोर परिस्थितियों में अनुपयोगी हैं, वहीं बाजरा सूखे, कम उर्वरता वाली मिट्टी, उच्च लवणता, या उच्च तापमान वाले क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है। कठोर तापमान की स्थिति के साथ जलवायु परिवर्तन के मामले में भी बाजरा अनुकूलनीय है। अन्य अनाजों की तुलना में बाजरा की अधिक तापमान में भी अनाज पैदावार क्षमता के कारण यह दुनिया के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों के लिए जलवायु-अनुकूल उपयुक्त फसल बन गई है।

पोषक तत्वों का भंडार

विकसित देशों सहित पूरी दुनिया में बाजरा को "न्यूट्रीसीरियल" कहा जाता है क्योंकि यह ऊर्जा, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, फाइबर, लोहा और जस्ता का एक अच्छा स्रोत है। ज्वार (349 किलो कैलोरी/100 ग्रा.), गेहूं (346 किलो कैलोरी/100 ग्रा.), चावल (345 किलो कैलोरी/100 ग्रा.) और मक्का (325 किलो कैलोरी/100 ग्रा.) की तुलना में बाजरा (361 किलो कैलोरी/100 ग्रा.) ऊर्जा का एक उत्तम स्रोत है।

बाजरे में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा 67.5 ग्रा./100 ग्रा. है, जिसमें 56 से 65% स्टार्च के साथ 20 से 22% एमाइलोज और 2.6 से 2.8% मुक्तशर्करा (मुख्य रूप से सुक्रोज) पाई जाती है। अन्य अनाजों की तुलना में इसमें उच्च फाइबर (1.2 ग्रा./100 ग्रा.) और अल्फा-एमाइलेज होते है। बाजरा में प्रोटीन की प्रचुर मात्रा (11.6/100 ग्रा.) होती है, जो गेहूं के बराबर लेकिन चावल से अधिक होती है। इसमें मेथियोनीन की भरपूरता है, लेकिन सल्फर युक्त अमीनो एसिड की कमी होती है। कम प्रोलामिन अंश के साथ, बाजरा ग्लूटेन मुक्त अनाज है और एकमात्र ऐसा अनाज है जो पकने के बाद अपने क्षारीय गुणों को बरकरार रखता है जो ग्लूटेन एलर्जी वाले लोगों के लिए उपयुक्त होता है।

अन्य अनाजों की तुलना में बाजरा वसा की मात्रा (5 मि.ग्रा./100 ग्रा.) से भरपूर होता है और इसके वसा की पाचनशक्ति भी बेहतरीन होती है। यह अन्य अनाज की तुलना में पोषक रूप से महत्वपूर्ण ओमेगा-3 फैटी एसिड की उच्च सामग्री के साथ असंतृप्त वसा अम्ल (75%) से भरपूर है। बाजरा विटामिन और खनिजों का एक समृद्ध स्रोत है। इसमे कुल खनिज सामग्री 2.3 मि.ग्रा. / 100 ग्रा. है जिसमें पोटेशियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम, लोहा, जस्ता, तांबा और मैंगनीज शामिल हैं। यह विटामिन बी (थियामिन, राइबोफ्लेविन और नियासिन) से भरपूर होता है।



बाजरे में विटामिन ए की मात्रा गेहूं के विटामिन ए और फोलिक एसिड के जैसे ही अच्छी होती है। बाजरे में उच्च पोषक तत्व होते हैं, लेकिन पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता कम होती है, जो कि कुछ एंटी-न्यूट्रिशनल कारकों जैसे कि फाइटिक एसिड, पॉलीफेनोल आदि की उपस्थिति के कारण होता है। पॉलीफेनोल सामग्री 491 से 765 मि.ग्रा./100 ग्रा. तक पाई गई, जबकि फाइटिक एसिड सामग्री 354 से लेकर 825.7 मि.ग्रा. तक अनाज में एंटी-न्यूट्रिएंट्स की मौजूदगी के कारण बाजरा में प्रोटीन और स्टार्च की पाचनशक्ति कम होती है। बाजरा की किस्मों में प्रोटीन पाचनशक्ति 54.2 से 59.2 प्रतिशत तक होती है। बाजरा की स्टार्च पाचनशक्ति 12 से 18.7 मि.ग्रा. माल्टोज / ग्रा. तक बताई गई है।

मधुमेह और सीलिएक रोग के लिए बाजरा

बाजरा मक्का, गेहूं और चावल की तुलना मे एक बेहतर ग्लाइसेमिक सूचकांक वाला एक टिकाऊ अनाज है। धीरे-धीरे पचने योग्य स्टार्च (एसडीएस) और प्रतिरोधी स्टार्च (आरएस) जैसे गुणों के लिए बाजरे में मौजूद आनुवंशिक विविधताएं बाजरा में कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स (जीआई) में योगदान करने के लिए जानी जाती हैं। मधुमेह रोगियों के लिए कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स आहार भोजन का अच्छा स्रोत होते हैं। बाजरा में ग्लूटेन का स्तर कम होने से सीलिएक रोग से बचाव होता है जो चावल और गेहूं जैसे प्रमुख खाद्यानों के साथ एक बड़ी समस्या है।

जलवायु

बाजरे की खेती गर्म जलवायु तथा 400-600 मिलिमीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में भली-भांति की जा सकती है। 32-37° से. तापमान बाजरे के लिए उपयुक्त माना गया है। यदि पुष्पन अवस्था में वर्षा हो जाए या फव्वरों से सिंचाई कर दी जाए तो फूल धुल जाने के कारण बाजरे में दानों का भराव कम हो जाता है। बालियों में दाना भरने की अवस्था में यदि नमी अधिक हो एवं तापमान कम हो तो अर्गट रोग के प्रकोप की संभावना बढ़ जाती है।

फसल प्रणाली

बाजरे की फसल के साथ यदि दलहनी फसलों (जैसे-मूंग, ग्वार, अरहर, मोठ एवं लोबिया) को अन्तःफसल के रूप में बोया जाए तो न केवल बाजरे के उत्पादन में वृद्धि होती है बल्कि, दलहनों के कारण मृदा उर्वरता में सुधार होता है एवं अतिरिक्त दाल उत्पादन से कृषकों की आय में भी वृद्धि होती है। साथ ही दलहनवर्गीय फसलें जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण करती है जिससे मृदा में नाइट्रोजन बढ़ जाती है। फलस्वरूप उर्वरकों से नाइट्रोजन कम देनी पड़ती है जिससे कृषि लागत में कमी आती है। मृदा की उर्वरता बनाए रखने के लिए फसल चक्र अपनाना महत्वपूर्ण है। बाजरे के लिए निम्न एकवर्षीय फसल चक्रों को अपनाना चाहिए।

बाजरा - गेहूं या जौ

बाजरा - सरसों या तारामीरा

बाजरा - चना या मटर या मसूर

बाजरा - गेहूं या सरसों - ग्वार या ज्वार या मक्का (चारे के लिए)

बाजरा - सरसों - ग्रीष्मकालीन मूंग



बाजरा + अरहर अंतःफसलीकरण



बाजरा + ग्वार अंतःफसलीकरण

मृदा

बाजरे की फसल अच्छी जल निकास वाली सभी तरह की भूमियों में ली जा सकती है, परंतु बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वोत्तम है। बाजरे के लिए भारी मृदा कम अनुकूल रहती है तथा इसके लिए अधिक उपजाऊ भूमियों की बहुत आवश्यकता नहीं होती है।

उन्नत किस्में

विभिन्न राज्यों के लिए बाजरे की उपयुक्त किस्में सारणी 1 में लिखित हैं:

सारणी 1. विभिन्न क्षेत्रों के लिए बाजरा की उन्नतशील किस्में

क्रम संख्या	किस्म	उपयुक्त क्षेत्र
1.	पूसा 1201	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र
2.	बीएचबी 1202	राजस्थान
3.	बलवान	राजस्थान
4.	जीके 1116	राजस्थान
5.	एचएचबी 299	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात
6.	पीबी 1705	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश
7.	एएचबी 1200	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिल नाडु, महाराष्ट्र, तेलंगाना
8.	एनबीएच 4903	महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिल नाडु, तेलंगाना
9.	महाबीज 1005	महाराष्ट्र
10.	पीबीएच 306	तमिलनाडु, महाराष्ट्र, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक,
11.	एक्सएमटी 1497	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश
12.	केबीएच 3940	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश
13.	नंदी 75	गुजरात, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, तमिल नाडु
14.	जेकेबीएच 1100	उत्तर प्रदेश

15.	86 एम 82	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश
16.	जेकेबीएच 1105	उत्तर प्रदेश
17.	एमपीएमएच 21	राजस्थान, हरियाणा, गुजरात,
18.	पीएचबी 2884	पंजाब
19.	एचएचबी 272	राजस्थान, हरियाणा, गुजरात,
20.	86 एम. 84	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश

बाजरा की जैव-संवर्धित किस्में

बाजरा में मानव पोषण और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को पूरी करने की अधिकतम दक्षता है। स्वाभाविक रूप से बाजरे में लौह तत्व की मात्रा कम होती है जिसे फोर्टिफिकेशन (समृद्धिकरण) विधियों के माध्यम का उपयोग करके पूरा किया जाता है। आईसीएआर और अन्य संस्थानों ने बाजरा की कुछ उत्कृष्ट समृद्ध किस्मों को निम्नानुसार विकसित किया है:

- एचएचबी 299 (लौह और जस्ता समृद्ध संकर)
- एएचबी 1200 (लौह समृद्ध संकर)
- धनशक्ति (लौह समृद्ध संकर)
- आईसीएमएच-1201 (लौह और जस्ता समृद्ध संकर)

चारे के लिए बाजरे की किस्में

राज बाजरा चरी-2, जाइन्ट बाजरा, एवीकेबी-2, एवीकेबी-19, जीएफबी-1, पीसीबी-164, नरेन्द्र चरी बाजरा-2, आदि।

खेत की तैयारी

गर्मियों में गहरी जुताई करें तथा उत्तम जल निकास के लिए खेत को समतल कर लें। बाजरे की अच्छी फसल लेने के लिए एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए तथा इसके बाद दो-तीन बार जुताई करके बुवाई करनी



शून्य जुताई + मल्च विधि से बाजरे की खेती

चाहिए। दीमक व लट के प्रकोप वाले क्षेत्रों में 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से फोरेट अंतिम जुताई से पूर्व डालनी चाहिए। बाजरे की खेती शून्य जुताई विधि द्वारा भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके लिए खेत को समतल करना व मृदा पर पूर्व फसल के अवशेषों या अन्य वानस्पतिक अवशेषों का आवरण बनाए रखना लाभप्रद होता है।

बीज एवं बुवाई

बारानी क्षेत्रों में मानसून की पहली बारिश के साथ ही बाजरे की बुवाई कर देनी चाहिए। उत्तरी भारत में बाजरे की बुवाई के लिए जुलाई का प्रथम पखवाड़ा सर्वोत्तम है। 25 जुलाई के बाद बुवाई करने से 40 से 50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रतिदिन पैदावार में नुकसान होता है। बुवाई के लिए 5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। बाजरे की फसल 45 से 50 से.मी. की दूरी पर कतारों में बोनी चाहिए। बुवाई के 10 से 15 दिन बाद यदि पौधे घने हों तो पौधों की छंटाई कर देनी चाहिए तथा पौधे से पौधे की दूरी 8 से 10 सें.मी. रखनी चाहिए जिससे प्रति हैक्टेयर क्षेत्र में 1.75 से 2 लाख पौधे प्राप्त हो सकें। इस संख्या में पौधे उगाने से बाजरे की अधिकतम उपज ली जा सकती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

सिंचित क्षेत्र: मृदा परीक्षणों के आधार पर संस्तुत उर्वरकों का उपयोग करना अधिक लाभप्रद रहता है। परंतु यदि मृदा जांच परिणाम उपलब्ध नहीं है तो सिंचित क्षेत्रों में बाजरे के लिए उर्वरकों की आवश्यकता इस प्रकार है: नाइट्रोजन @ 80 कि.ग्रा./हैक्टेयर, फॉस्फोरस @ 40 कि.ग्रा. ($पी_2ओ_5$)/हैक्टेयर एवं पोटाश @ 40 कि.ग्रा. ($के_2ओ$)/हैक्टेयर।

बारानी क्षेत्र: बारानी क्षेत्रों के लिए निम्नानुसार उर्वरकों की आवश्यकता होती है: नाइट्रोजन @ 60 कि.ग्रा./हैक्टेयर, फॉस्फोरस @ 30 कि.ग्रा. ($पी_2ओ_5$) /हैक्टेयर एवं पोटाश @ 30 कि.ग्रा. ($के_2ओ$)/हैक्टेयर।

सिंचित व असिंचित क्षेत्रों में जस्ते की कमी हो तो 5 कि.ग्रा. जस्ता/हैक्टेयर की दर से दें। जैव उर्वरकों जैसे *एजोस्पिरिलम* व फॉस्फोरस घोलक जैव उर्वरक के द्वारा बीजोपचार करके बुवाई करना फसल के लिए अधिक लाभप्रद रहता है। सिंचित व असिंचित दोनों परिस्थितियों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस, पोटाश व जस्ते की पूरी मात्रा लगभग 3-4 से.मी. गहराई पर मृदा में डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा बुवाई के 30 से 35 दिन बाद मृदा में उपयुक्त नमी होने की स्थिति में डालनी चाहिए।



बाजरा की फसल में परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन

जल प्रबंधन

यद्यपि बाजरा की फसल मुख्यतः बारानी क्षेत्रों में ली जाती है परंतु फूल आते समय व दाना बनते समय नमी की कमी होना अधिक हानिप्रद है। अतः यदि सिंचाई का स्रोत उपलब्ध हो तो इन क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई करना लाभप्रद होता है। बाजरा जल भराव से भी प्रभावित होता है, अतः जल निकास का समुचित प्रबंध करें।

नमी संरक्षण तकनीक

बाजरा एक वर्षा आधारित फसल है और अच्छी फसल के लिए नमी संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। विभिन्न नमी संरक्षण विकल्पों में जुताई और फसल स्थापना तकनीक जैसे 2-3 साल में एक बार गहरी जुताई या बुवाई से पहले 3-4 जुताई या रोपण की मेड़ और नाली प्रणाली सतही अपवाह को कम करती है और वर्षा जल के मिट्टी में प्रवेश को बढ़ाती है। इसी प्रकार, गोबर की खाद या कंपोस्ट के प्रयोग से भी मिट्टी की नमी धारण क्षमता में सुधार होता है। इसके अलावा, मल्च (भूसा, गोबर की खाद, सरसों का डंठल आदि) का उपयोग वाष्पीकरण के नुकसान को रोकता है और मिट्टी के तापमान को 3-4^0 सेंटीग्रेड तक कम कर देता है।

विभिन्न प्रकार के वाष्पोत्सर्जन-रोधक (केओलिन, पीएमए, एट्राज़िन, आदि और खरपतवार और अस्वस्थ अंकुरों को समय पर हटाना भी नमी के नुकसान को कम करने में सहायक होते हैं। पौधों को मजबूती देने के लिए पोटैशियम नाइट्रेट (0.2%) के साथ बीज उपचार, सूखे की डिग्री के अनुसार पौधों की संख्या में कमी और वाष्पीकरण के नुकसान को रोकने के लिए मिट्टी की ऊपरी परत को तोड़ना भी शुष्क क्षेत्रों में प्रभावी तकनीक हैं। इसके अलावा, फसल के शुरुआती चरणों के दौरान अलग-अलग जड़ संरचना और त्वरित मिट्टी कवर के कारण ग्वार, लोबिया या मूंग जैसी फसलों के साथ अंतरफसल एक महत्वपूर्ण नमी-कुशल उत्पादन प्रणाली के रूप में कार्य करती है।



फसल अवशेष आवरण (मल्च) से बाजरे में नमी संरक्षण

खरपतवार प्रबंधन

बाजरे की फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए 1 कि.ग्रा. एट्राजीन या पेंडिमिथालिन 500-600 लिटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। यह छिड़काव बुवाई के बाद तथा अंकुरण से पूर्व करते हैं। इसके साथ-साथ बाजरे की बुवाई के 20 से 30 दिन बाद एक बार खुरपी या कसौला से खरपतवार निकाल देने चाहिए। हल्की मिट्टी के लिए, टेरब्यूट्रिन या प्रोपाक्लोर (1.0-2.0 कि.ग्रा सक्रिय तत्व / हैक्टेयर) को उद्भव से पहले लगाने की सिफारिश की जाती है। भारी मिट्टी में उद्भव से पहले उपयोग के लिए नोरिया या फ्लुओमेट्यूरॉन (1.0-1.5 कि.ग्रा सक्रिय तत्व / हैक्टेयर) की सिफारिश की जाती है। देर से निकलने वाली चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों और कई वार्षिक घासों को नियंत्रित करने के लिए उद्भव के बाद 2,4 डीईई (0.25-0.5 कि.ग्रा सक्रिय तत्व / हैक्टेयर) के प्रयोग की सिफारिश की जाती है। 3-4 पत्तियों के चरण में उभरने के बाद टेम्बोट्रियोन (90-100 ग्रा. सक्रिय तत्व / हैक्टेयर) देर से उगने वाले खरपतवारों के व्यापक स्पेक्ट्रम को नियंत्रित करने में प्रभावी है।

कीट प्रबंधन

बाजरे की फसल में प्रायः निम्न कीटों का प्रकोप होता है:

1. *दीमक:* दीमक फसल की जड़ों को काट देती है ओर तने में मिट्टी चढ़ा देती हैं। दीमक ग्रस्त पौधों को खींचते ही आसानी से उखड़ जाते हैं। इसके प्रकोप को रोकने के लिए 2 कि.ग्रा./है. की दर से क्लोरोपाइरीफॉस या 200 मि.लि./है. एमीडाक्लोप्रीड का पौधों की जड़ों में छिड़काव करें या हल्की वर्षा के समय मिट्टी में मिलाकर बिखेर दें। अगर सिंचाई सुविधा हो तो एक हल्की सिंचाई करके भी दीमक को कम किया जा सकता है।
2. *तना मक्खी:* इसकी गिडारें व इल्लियां प्रारंभिक अवस्था में पौधों की बढ़वार को काट देती हैं जिससे पौधे सूख जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 25 कि.ग्रा./है. मैलाथियान (5 प्रतिशत डस्ट या धुल) खेत में डालना चाहिए।
3. *सफेद लट:* यह लट पौधों की जड़ों को काटकर फसल की विभिन्न अवस्थाओं में बाजरे को नुकसान पहुंचाती है। इसके नुकसान से बाजरा पीला पड़ जाता हैं। इसकी रोकथाम के लिए फ्यूराडॉन 3 प्रतिशत को 12 कि. ग्रा./है. की दर से बाजरे की बुवाई के समय मिट्टी में डालना चाहिए। पहली बारिश के समय सफेद लट के व्यस्क को नियंत्रण करने के लिए सांय के समय लाइट ट्रेप लगाना चाहिए ।

रोग प्रबंधन

1. *हरी बाली रोग:* यह रोग मृदु रोमिल आसिता या डाउनी मिल्ड्यू के नाम से भी जाना जाता है। यह फंफूदी जनक रोग है। यह रोग अंकुरण के समय व पौधों की बढ़वार के समय शुरू होता है। इससे प्रभावित पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा बढ़वार रूक जाती है। प्रातःकाल में पौधों की निचली पत्तियों पर सफेद चूर्णनुमा पदार्थ दिखाई देता है। रोग की उग्र अवस्था में प्रभावित पौधों पर बालियां नहीं बनती हैं। जब इस रोग का प्रकोप बाली बनने की अवस्था में होता है तो बालियों पर दानों के स्थान पर छोटी-छोटी हरी पत्तियां



उग जाती हैं। इस कारण से इसे हरी बाली रोग भी कहते हैं। रोगग्रस्त पौधों की सूखी पत्तियां खेत में गिरने से फसल अगले वर्ष भी इस बीमारी से ग्रस्त हो सकती है।

रोग की रोकथाम के लिए सदैव प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करें। बुवाई से पहले रिडोमिल एम.जेड.-72 या थाइरम से 3 ग्रा. / कि.ग्रा बीज की दर से बीजोपचार करके बुवाई करें। खेत में रोगग्रस्त पौधे दिखाई देने पर पौधों को समय-समय पर उखाड़कर जला देना चाहिए। उपयुक्त फसल चक्र अपनाकर भी हरी बाली रोग की रोकथाम की जा सकती है। खड़ी फसल में 0.2 प्रतिशत की दर से डाइथेन जेड 78 या 0.35 प्रतिशत की दर से कॉपर ओक्सीक्लोराइड का पर्णीय छिड़काव करके इस रोग की रोकथाम की जा सकती है। आवश्यकता होने पर 10 से 15 दिन बाद पुनः एक छिड़काव और करना चाहिए।

2. *अर्गट:* यह रोग बाली बनते समय बाजरे को नुकसान पहुंचाता है। रोगग्रस्त पौधों में बालियों पर शहद जैसी चिपचिपी बूंदें दिखाई देती हैं। शहद के समान दिखाई देने वाला यह पदार्थ कुछ दिनों बाद सूखकर गाढ़ा पड़ जाता है। इस जहरीले पदार्थ को अर्गट के नाम से जाना जाता है, जो मानव एवं पशुओं के लिए हानिकारक होता है। बाजरे की संकर किस्मों में यह रोग अधिक पाया जाता है।

   रोग की रोकथाम के लिए फसल की बुवाई उचित समय पर करें। अगेती बुवाई करने से फसल में फूल आते समय तापमान कम नहीं होता तथा आर्द्रता भी अधिक नहीं होती जिससे रोग का प्रकोप कम रहता है। सदैव प्रमाणित बीज ही उपयोग में लें तथा उपयुक्त फसल चक्र अपनाएं। खेत में रोगग्रस्त बालियों को काटकर जला देना चाहिए। बीजों में मिले हुए रोगजनक स्क्लेरोसिया या अर्गट के पिण्डों को दूर करने के लिए बीजों को 10 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर अलग कर देना चाहिए। उसके बाद बीजों को धोकर साफ करें एवं सुखाकर बुवाई करें। बीजों को 2 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से बाविस्टीन द्वारा उपचारित करके बोएं। खड़ी फसल में रोग की रोकथाम के लिए बाविस्टिन 0.1 प्रतिशत या जिराम 0.1 प्रतिशत का आवश्यकतानुसार 2 से 3 बार पर्णीय छिड़काव करें।

उपज

यदि वैज्ञानिक विधि से बाजरे की फसल ली जाए तो सिंचित अवस्था में इसकी उपज 3.0-3.5 टन दाना एवं 9-10 टन सूखा चारा प्रति हैक्टेयर तथा असिंचित अवस्था में 1.5-2.0 टन/है. दाना एवं 6.0 -7.0 टन सूखा चारा मिल जाता है। बाजरे के दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाएं तथा दानों में नमी की मात्रा 8-10 प्रतिशत होने पर उपयुक्त स्थान पर भंडारण करें।

अरहर



अरहर एक अत्यंत महत्वपूर्ण दलहनी फसल है जिसमें प्रोटीन ,खनिज पदार्थ और कार्बोहाईड्रेट पर्याप्त मात्रा में होते हैं। यह सुगमता से पचने वाली दाल है, अतः रोगी को भी दी जा सकती। भारत में अरहर की खेती तीन हजार वर्ष पूर्व से होती आ रही है। इसका उत्पत्ति स्थल अफ्रीका को माना जाता है। शायद इस फसल को अफ्रीका से ही एशिया में लाया गया है। डाल के अतिरिक्त इसकी हरी फलियां सब्जी के लिए, खली चूरी पशुओं के लिए रातव, हरी पत्ती चारा के लिए तथा तना ईंधन, झोंपड़ी और टोकरी बनाने के काम में लाया जाता है। इसमें औसतन 21-26 प्रतिशत प्रोटीन होती है। देश की अधिकतर शाकाहारी जनता परतीं के लिए दालों पर निर्भर रहती है। यदि प्रोटीन की उपलब्धता बढ़ानी है तो दलहनों का उत्पादन बढ़ाना होगा। इसके लिए उन्नतशील प्रजातियां और उनकी उन्नतशील कृषि विधियों का प्रयोग करना आवश्यक होगा। अरहर एक विलक्षण गुण संपन्न फसल है। इसका उपयोग अन्य दलहनी फसलों की तुलना में दाल के रूप में सर्वाधिक किया जाता है।

जलवायु

अरहर आर्द्र तथा शुष्क दोनों ही प्रकार के गर्म क्षेत्रों में भली प्रकार उगाई जा सकती है, लेकिन शुष्क भागों में इसे सिंचाई की आवश्यकता होती है। फसल की प्रारंभिक अवस्था में पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए नम जलवायु की आवश्यकता होती है। इसे 75-100 सें.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

फसल प्रणाली

अरहर की शीघ्र पकने वाली किस्मों जो 130-160 दिनों में पक जाती है, उनके विकास होने से अरहर के बाद रबी



की फसल की बुवाई संभव हुई है। इन किस्मों की बुवाई जून के प्रथम पखवाड़े में की जाती है और दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक फसल की कटाई कर ली जाती है। अरहर के साथ बहुत से फसल चक्र अपनाए जाते हैं:

अरहर - बाजरा/ ज्वार/ मक्का/ तिल/ सोयबीन/ उड़द/ मूंग, आदि

अरहर - गेहूं

अरहर - गेहूं - मूंग

अरहर - गन्ना

मूंग (ग्रीष्म) - अरहर - गेहूं

अरहर (अति अगेती) - आलू - उड़द

अरहर - उड़द - मसूर/ तारामीरा (बारानी क्षेत्रों में)

अरहर की अन्य फसलों के साथ अंतर-फसली खेती

अरहर + मूंग / उड़द / लोबिया/ सोयाबीन

अरहर + मूंगफली/ अरंडी /तिल/ कपास/ गन्ना/ सूरजमुखी

ज्वार/ मंडुआ/ मक्का/ बाजरा/ धान + अरहर

मृदा

भूमि का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि खेत ऊंचा एवं समतल हो तथा उसमें जल निकास अच्छा हो। अरहर को अधिकांश मृदाओं में उगाया जा सकता है। उत्तर भारत में अरहर को मटिमार दोमट मिट्टी से लेकर रेतीली दोमट मिट्टी में उगाया जाता है। अरहर की फसल के लिए बलुई-दोमट अथवा दोमट मिट्टी जिसका पी एच मान 6.5 से 7.5 के बीच हो और भूमि जल का तल गहराई पर हो, सर्वोत्तम रहती है।

उन्नत किस्में

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान तथा विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा भारतवर्ष में उत्तरी क्षेत्रों के लिए अनेक किस्मों का विकास किया गया है जिनकी औसत उपज लगभग 2000 से 2500 कि.ग्रा./है. है। इनके बारे में विस्तृत जानकारी निम्नलिखित है:

पूसा अरहर 16: आईसीएआर-आईएआरआई, नई दिल्ली द्वारा विकसित अरहर की किस्म पूसा अरहर 16 वर्ष 2018 में जारी की गई थी। पूसा अरहर 16 की औसत उपज 2021 कि.ग्रा./है. है। पूसा अरहर 16 अति अगेती (120 दिन) पकने वाली, अर्ध-बौनी, दृढ़, अर्ध-खड़े सुसंहत (कॉम्पैक्ट) पौधे प्रकार के साथ उच्च उपज देने वाली किस्म है जो कि है कंबाइन कटाई के लिए भी उपयुक्त है। इसकी अतिरिक्त शीघ्र परिपक्वता फसल का लाभ उठाते हुए रबी में सरसों/ गेहूं/ आलू आदि की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। इस प्रकार, फसल गहनता को बढ़ाया जा सकता है। इसकी दाल की गुणवत्ता भी बहुत अच्छी है।



पूसा अरहर 2017-1: यह किस्म अपने सुसंहत (कॉम्पैक्ट) अर्ध-खड़े पौधे के प्रकार के कारण एकल फसल के लिए और सघन रोपण के लिए भी उपयुक्त है। यह किस्म 122 दिनों (120-125 दिनों तक) में पक जाती है, जो कटाई के बाद रबी में सरसों/ चना/ आलू/ गेहूं की समय पर बुवाई करने में सहायक है। अत: इस किस्म को उगाकर फसल गहनता को बढ़ाया जा सकता है। इसकी औसत उपज 2116 कि.ग्रा./है. है और संभावित उपज 2157 कि.ग्रा./है. तक है।

पूसा अरहर 2018-4: यह किस्म उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में "अरहर-गेहूं चक्र" के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 140-145 दिनों में पक जाती है और इसकी उपज क्षमता 2306 कि.ग्रा./है. तक है। उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए जारी अन्य किस्मों की तुलना में इसके बीज का आकार अधिक मोटा (100 बीज का वजन 8.73 ग्रा.) है।

पूसा अरहर 2018-2: आईसीएआर-आईएआरआई, नई दिल्ली द्वारा विकसित अरहर की किस्म पूसा अरहर 2018 2021 में दिल्ली और एनसीटी के लिए जारी की गई थी। यह किस्म 131 दिनों (128-138 दिनों तक) में पक जाती है और इसकी औसत उपज 2009 कि.ग्रा./है. है और संभावित उपज 2300 कि.ग्रा./है. तक है।

देश के विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाने वाली संस्तुत किस्मों का विवरण सारणी 1 में दिया गया है ।

सारणी 1. देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए संस्तुत अरहर की किस्में

किस्म	पकने की अवधि (दिन)	उपज (कि.ग्रा./है.)	उपयुक्त क्षेत्र एवं अन्य विवरण
अगेती किस्में			
यूपीएएस-120	120-125	1600-2000	संपूर्ण उत्तर प्रदेश में मैदानी क्षेत्रों में नवंबर में गेहूं बोया जा सकता है। राजस्थान, हरियाणा में भी लोकप्रिय।
आईपीएई 15-6	129-149	2100-2500	देश के मध्य क्षेत्र।
पूसा 2001	135-140	1800-1900	राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली की सिंचित अवस्था। जल्दी पकने वाली मानसून से पूर्व बुआई हेतु उपयुक्त। उकठ, अंगमारी एवं बांझ मोज़ेक रोगों के प्रति सहनशील।
पूसा 2002	140-145	1700-1800	राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली की सिंचित अवस्था।
पंत ए-1	130-135	1000-1200	संपूर्ण उत्तर प्रदेश, बहुत जल्द पकने वाली, किस्म एवं रोग कीट का कम प्रकोप।
पंत अरहर 6 (पीए 421)	135-177	1700-2000	देश के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र। उकठा और बांझ मोज़ेक के प्रति मध्यम अवरोधी
पीए 291	140-150	1600-1800	देश के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र। फाईटोफथेरा तना अंगमारी एवं फली बेधक के प्रति सहनशील।
आईसीपीएल-151 (जागृति)	130-140	1600-2000	उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्र तथा फलियां ऊपर गुच्छे में।
प्रभात	130-140	1600-1800	उत्तर-पश्चिमी तथा मध्य भागों के लिए उपयुक्त।
पूसा-855	150-160	2200-2600	देश के उत्तर-पश्चिमी तथा मध्य भागों के लिए उपयुक्त।



किस्म	पकने की अवधि (दिन)	उपज (कि.ग्रा./है.)	उपयुक्त क्षेत्र एवं अन्य विवरण
मध्यम अवधि में पकने वाली किस्में			
मालवीय चमत्कार	180-190	1500-1600	बुन्देलखंड एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रचलित।
पूसा अगेती (एस-5)	160-170	1300-2000	देश के उत्तर प्रदेश तथा मध्य भाग, छोटा पौधा, मोटा दाना, फलियां ऊपर गुच्छे में, भूरा दाना।
राज विजय अरहर 19	166-185	1400-1500	आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, एवं तमिल नाडु के लिए उपयुक्त।
रेणुका (बीडीएन 2013-2)	165-170	1800-2100	मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान)। उकठा और बांझ मोज़ेक के प्रति मध्यम अवरोधी।
फुले तृप्ति (फुले तुर 10-1	167-169	1500-1600	मध्य क्षेत्र (छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात)। उकठा और बांझ मोज़ेक के प्रति मध्यम अवरोधी।
पछेती पकने वाली किस्में			
टाइप-7	260-270	1500-2000	संपूर्ण उत्तर मैदानी क्षेत्र, उड़द, ज्वार, बाजरा के साथ मिश्रित खेती के लिए उपयुक्त।
टाइप-17	260-270	1600-2000	संपूर्ण उत्तर मैदानी क्षेत्र, उड़द, ज्वार, बाजरा के साथ मिश्रित खेती के लिए उपयुक्त।
बहार (डी-1258)	260-265	2500-3000	उत्तर-पूर्व एवं मध्य मैदानी क्षेत्र, मिश्रित फसल के लिए उपुयक्त।
बसंत (डी 1234)	275-280	2500-3000	उत्तर-पूर्व मैदानी क्षेत्र, पौधे कम फैलने वाले, बांझ मोज़ेक रोग अवरोधी।
नरेन्द्र अरहर-1	260-270	2500-3000	संपूर्ण उत्तर प्रदेश, बांझ मोज़ेक अवरोधी एवं उकठा मध्यम अवरोधी।
आईपीए 203 (प्रकाश)	249-255	2500-2800	उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्र। फ्यूजेरियम उकठा के प्रति रोधी।
आईपीए 206 (गंगा)	245-250	2500-2600	उत्तर प्रदेश के लिए संस्तुत। फ्यूजेरियम उकठा और बांझ मोज़ेक अवरोधी।
आईपीए 15-2 (शारदा)	240-255	2800-3300	उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्र। फ्यूजेरियम उकठा और बांझ मोज़ेक अवरोधी।
पूसा अरहर 151	240-245	2000-2200	वर्षा-आधारित उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्र।
संकर किस्में			
आईसीपीएच-8	115-135	2500-3000	देश के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र, देश की प्रथम संकर किस्म, इक्रीसेट, हैदराबाद द्वारा विकसित, सूखा सहन करने की क्षमता, सह-फसली के लिए उपयुक्त।

किस्म	पकने की अवधि (दिन)	उपज (कि.ग्रा./है.)	उपयुक्त क्षेत्र एवं अन्य विवरण
पीपीएच-4	140-145	2500-3000	पंजाब के लिए विकसित। उत्तर-पश्चिम मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, न्यूनतम अवधि, फसल सुरक्षा रसायनों का प्रयोग सुगम।
एच 82-1 (पारस)	117-125	1600-2200	
एच 81-22	120-130	1800-2200	उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, न्यूनतम अवधि, फसल में सुरक्षा रसायनों का प्रयोग सुगम।
आईपीए 15-03	150-155	2400-2500	देश के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों के लिए संस्तुत। फ्यूजेरियम उकठा के प्रति रोधी।
आईपीए 15-05	150-155	2400-2500	देश के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों के लिए संस्तुत। फाइटोफ्थेरा अंगमारी एवं बांझ मोज़ेक अवरोधी तथा फ्यूजेरियम उकठा के प्रति मध्यम रोधी।

खेत की तैयारी

अरहर की फसल उगाने के लिए खेत की अच्छी तैयारी होनी चाहिए। रबी की फसल की कटाई के बाद खेत की गहरी जुताई करके खुला छोड़ देना चाहिए, जिससे कि भूमि में उपस्थित कीड़े सूर्य की गर्मी से मर जाएं। अरहर बोने से पहले खेत में सिंचाई करते हैं। सिंचाई के दो या तीन दिन बाद खेत जुताई योग्य होने पर देशी हल या कल्टीवेटर या हेरो से खेत की दो-तीन बार जुताई की जाती है तथा साथ ही पाटा चलाकर खेत को समतल कर देते हैं।

बीज एवं बुवाई

खरीफ में जहां पानी खड़ा रहने की समस्या होती है वहां उठी हुई क्यारियों में कूंड सिंचाई विधि द्वारा बुवाई करनी चाहिए। जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, वहां जून के प्रथम सप्ताह में बुवाई करना लाभप्रद रहता है। उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रों जैसे पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इलाकों में जून के दूसरे सप्ताह में पलेवा करके अरहर की अगेती किस्मों की बुवाई करें। अति अगेती किस्में मानसून की पहली बरसात के बाद भी बो सकते हैं। उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों जैसे बिहार, बंगाल और पूर्वी उत्तर प्रदेश में अरहर की बुवाई मानसून की पहली बरसात के बाद जून के अंतिम सप्ताह में शुरू होती है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में अरहर बुवाई का उचित समय सारणी 2 में दिया गया है।

सारणी 2. देश के विभिन्न क्षेत्रों/ प्रांतों में अरहर की बुवाई का उपयुक्त समय

क्षेत्र	राज्य	बुवाई का समय
उत्तर-पश्चिमी मैदान	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं उत्तर-पश्चिमी राजस्थान	अगेती: मई के दूसरे पखवाड़े से जून का पहला पखवाड़ा पछेती: जुलाई का पहला पखवाड़ा
उत्तर-पूर्वी मैदान	पूर्वी एवं मध्य उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, असम एवं झारखण्ड	अगेती: जून का पहला पखवाड़ा पछेती: जुलाई का पहला पखवाड़ा रबी-पूर्व: सितंबर का पहला पखवाड़ा

मध्य क्षेत्र	छत्तीसगढ़, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान	जुलाई का पहला पखवाड़ा अथवा मानसून के आरंभ होने पर
दक्षिणी क्षेत्र	कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिल नाडू एवं ओडिशा	खरीफ: जून के दूसरे पखवाड़े से जुलाई का पहला पखवाड़ा रबी: सम्पूर्ण सितंबर माह

बीज की मात्रा बुवाई के समय, मृदा में नमी की मात्रा, बीज की गुणवत्ता, बीज के आकार और बुवाई की दूरी पर निर्भर करती है। कम, मध्य एवं दीर्घ अवधि की किस्मों की बीज दर निम्न प्रकार है:

अगेती किस्में: 12-15 कि.ग्रा./है.

मध्यम अवधि किस्में: 10-12 कि.ग्रा./है.

दीर्घ अवधि किस्में: 8-10 कि.ग्रा./है.

किस्मों की पकने की अवधि एवं बुवाई के समय के आधार पर निम्नलिखित अंतरण (बुवाई की दूरी) की सामान्य संस्तुति इस प्रकार है:

अगेती एवं मध्यावधि किस्में: 40-60 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी तथा 10-15 सें.मी. पौधे से पौधे की दूरी

दीर्घ अवधि किस्में: 60-120 सें.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी तथा 10-20 सें.मी. पौधे से पौधे की दूरी

बीज बोने से पहले उसे जीवाणु टीका तथा कवकनाशी दवा से उपचारित करें। पहले बीज को कवकनाशी दवा बाविस्टीन 2 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। उसके बाद ही जीवाणु टीका से उपचारित करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

दलहनी फसल होने के कारण अरहर के पौधे अपनी नाइट्रोजन की आवश्यकता मुख्यतः स्वयं अपनी जड़ों में पाए जाने वाली ग्रंथियों द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके कर लेते हैं। बलुई-दोमट या दोमट भूमियों में जहां नाइट्रोजन की मात्रा कम हो, प्रति हैक्टेयर करीब 20 से 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन डालना आवश्यक होता है। फॉस्फोरस तथा पोटाश के लिए मृदा परीक्षण करना आवश्यक है। यदि भूमि में उपस्थित फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा कम हो, तो प्रति हैक्टेयर 60 से 75 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) तथा 30 से 40 कि.ग्रा./है. पोटाश ($के_2ओ$) डालना चाहिए। अरहर की अगेती किस्मों के लिए प्रति हैक्टेयर 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) और 40 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) की सिफारिश की गई है।

जल प्रबंधन

जून के प्रथम सप्ताह में बोई गई फसल को वर्षा प्रारंभ होने से पहले दो या तीन हल्की सिंचाई देनी आवश्यक होती हैं। यदि वर्षा का वितरण ठीक प्रकार से न हो और मौसम लंबे समय तक सूखा रहे तो एक सिंचाई फूल निकलने के पहले और दूसरी उसके उपरांत फलियां बनते समय देनी चाहिए। अंतिम सिंचाई फसल की कटाई के 7 दिन पहले दें और फसल काटकर अगली फसल की बुवाई के लिए खेत तैयार करें जिसमें समय की बचत होगी और गेहूं या रबी की ऐसी फसल समय पर बोई जा सकेगी। खड़े पानी में अरहर की फसल को काफी नुकसान होता है, इसलिए खेत

में जल निकास का समुचित प्रबंध करना आवश्यक है। ऐसे स्थानों पर जहां पानी खड़ा रहता हो, मेड़ों पर उगाई गई अरहर की फसल से अधिक पैदावार मिलती है।

खरपतवार प्रबंधन

बुवाई के आरंभिक 45-50 दिन तक खरपतवारों की रोकथाम करना आवश्यक होता है। इसके बाद फसल की बढ़वार ज़ोर पकड़ लेती है और खरपतवार कोई विशेष हानि नहीं पहुंचा पाते। खुरपी या कसोला के द्वारा फसल बुवाई के 30 और 45 दिन बाद दो निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। खरपतवार नियंत्रण के लिए रसायनों का भी प्रयोग किया जा सकता है, इसके लिए एलाक्लोर (2 कि.ग्रा./हैक्टेयर) या पैन्डीमेथालिन (1 कि.ग्रा./है. की दर से) 600 लिटर पानी में घोल बनाकर फसल बुवाई के बाद तथा उगने से पहले छिड़क दें। इसके अलावा फ्लुक्लोरेलिन 1 कि ग्रा प्रति हैक्टेयर 600 लिटर पानी में घोल बनाकर बीज बोने से पहले छिड़काव करके भूमि की ऊपरी सतह में मिला देने से खरपतवार नष्ट हो जाते है। अरहर में अन्तरफसलीकरण/मिश्रित खेती से भी खरपतवारों का प्रकोप कम होता है।

कीट प्रबंधन

1. *फली छेदक:* यह अरहर का व्यापक रूप से फैलने वाला कीट है। यह पत्तियों और फलियों को खाता है। इसे वनस्पति और फली बनने की अवस्था में देखा जा सकता है। अधिक उत्पादन के लिए इसका नियंत्रण आवश्यक है। इस कीट के नियंत्रण के लिए प्रति हैक्टेयर लगभग 12 फेरोमोन ट्रैप का उपयोग करें; फसल पर इमामेक्टिन बेंजोएट 5% एसजी @220 ग्रा./है. का छिड़काव करें या इंडोक्साकार्ब 15.8% एससी @333 मि.लि. /है. का छिड़काव करें और पौधों को हिलाकर सूंडियों को हाथ से इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए।



फली छेदक

2. *अरहर की फली मक्खी:* यह भारत में व्यापक रूप से वितरित है और उत्तरी भारत में बड़े आर्थिक नुकसान का कारण बनती है। भारत के कुछ हिस्सों में विशेष रूप से लंबी अवधि की किस्मों में महत्वपूर्ण नुकसान हो रहा है। मादा मक्खी फली पर अंडे देती है जिनसे सूंडियों का जन्म होता है। ये सूंडियां फली में विकसित दानों को खाकर फसल को नुकसान पहुंचाती हैं। सुंडियों की आबादी को नियंत्रित करने के लिए 50% फूल आने की अवस्था पर नीम बीज गिरी अर्क (एनएसकेई) 5 प्रतिशत का छिड़काव करें अथवा फसल पर इमामेक्टिन बेंजोएट 5% एसजी @ 220 ग्रा./है. का छिड़काव करें।



3. *प्लम मोथ:* लार्वा (सूंडी) बीजों, फूलों, कलियों और फलियों को नुकसान पहुंचाकर गिरा देते हैं। इसकी सूंडियां हरे-भूरे रंग की होती हैं जिनपर छोटे बाल और कांटे भी होते हैं। सूंडियां फली में प्रवेश करती हैं और विकसित हो रहे दानों को खा जाती हैं। इस कीट के नियंत्रण के 2% नीम तेल का छिड़काव करें अथवा फसल पर एज़ाडिरेक्टिन 0.03% डब्ल्यूएसपी का 2500-5000 ग्रा./है. की दर से छिड़काव करें या इमामेक्टिन बेंजोएट 5% एसजी @220 ग्रा./है. छिड़काव करें अथवा इंडोक्साकार्ब 15.8% एससी @ 333 मि.लि./है. छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

1. *तना विगलन:* इसके रोगग्रस्त पौधे शीघ्रता से सूखकर मर जाते हैं। रोग की बढ़ी हुई अवस्था में जमीन की सतह के पास भूरे रंग के क्षत बन जाते हैं। इस रोग के नियंत्रण के लिए रोगरोधी किस्में उगानी चाहिएं। इसके साथ ही फसल ऐसे खेत में बोनी चाहिए जिसमें पानी के निकास का अच्छा प्रबंध हो। बोने से पहले बीज का रिडोमील एम जेड-72 का 2.5 ग्रा/कि.ग्रा. बीज द्वारा उपचार करना चाहिए।
2. *उकठा:* रोगी पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और बाद में पौधा मुरझाकर सूख जाता है। अधिक वर्षों का फसल चक्र अपनाने के साथ खेतों में खरपतवार नियंत्रण बनाए रखने व गर्मी की जुताई करने से भूमि में पड़े रोगजनक नष्ट हो जाते हैं। अरहर का फसलचक्र तम्बाकू के साथ होने से बीमारी का प्रकोप कम हो जाता है। फसल के प्रभावित पौधों को कई वर्ष तक लगातार उखाड़ कर जला देने से भी रोग कम हो जाता है। इस रोग की रोकथाम का सबसे अच्छा एवं सरल उपाय रोगरोधी किस्मों का बोना है। बिहार में एन पी 15 व एन पी 38 किस्में काफी हद तक रोगरोधी पाई गई हैं। सेलेक्शन एन पी डब्ल्यू आर 15 व सेलेक्शन-2 ई-1 में भी रोग कम लगता है।
3. *सर्कोस्पोरा पर्ण चित्तियां:* रोग की आरंभिक अवस्था पर पुरानी पत्तियों पर गोलाकार से अनियमित आकार के परिगालित (नेक्रोटिक) धब्बे बन जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था पर ये धब्बे बड़े होकर आपस में मिल जाते हैं और पत्तियां सूखकर गिर जाती हैं। रोग की रोकथाम के लिए एक ही खेत में लगातार अरहर नहीं बोनी चाहिए तथा खेत को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए जिनेब जैसे कवकनाशी (0.3 प्रतिशत) के 10 दिन के अंतराल पर आवश्यकतानुसार दो-तीन छिड़काव करने चाहिए।
4. *बंध्यता मोजैक:* इस रोग के पौधे हल्के हरे दिखाई देते हैं तथा स्वस्थ हरे पौधों से बिल्कुल भिन्न होते है। प्रायः रोगी पौधों की पत्तियां आकार में छोटी हो जाती हैं जिन पर अनियमित आकार के हरे हल्के और साधारण हरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। रोगी पौधों में फूल व फली उत्पन्न नहीं होते हैं। यह रोग एक विषाणु (वाइरस) द्वारा फैलता है। इस रोगजनक वाइरस का वाहक एक प्रकार का माइट *(असेरिया केजानि)* होता है। इस रोग के नियंत्रण के लिए खेतों में सफाई रखनी चाहिए व खरपतवार आदि उखाड़ देने चाहिएं तथा जिस खेत में अरहर बोना है, यदि उसके आसपास अरहर के पुराने या अपने आप उगे पौधे हों, तो उन्हें नई फसल लगाने से पूर्व उखाड़ देना चाहिए। रोग नियंत्रण हेतु बीज को इमिडाक्लोप्रिड-70 डब्ल्यूएस 3.0 ग्रा./कि.ग्रा. से उपचारित करें तथा बुवाई के 30 व 45 दिन पर कोन्फीडोर - 200 एस एल (100 मि.लि. दवा 500 लिटर पानी) का छिड़काव प्रति हैक्टेयर की दर से करना चाहिए।



बंध्यता मोजैक

कटाई एवं मड़ाई

अरहर की कुछ किस्में 5-6 महीने में तथा कुछ किस्में 10 महीनों में पककर तैयार होती है। अगेती किस्में नवंबर-दिसंबर में और पछेती किस्में मार्च-अप्रैल में काटी जाती हैं। फसल की कटाई परंपरागत कृषि यंत्रों/ हंसिया/ गंडासे आदि से की जाती है। फसल सूख जाने पर फलियों को काटकर या पीटकर दाने निकाले जाते हैं। यांत्रिक विधि में पुलमैन थ्रेसर का उपयोग किया जाता है।

उपज

अरहर की फसल की पैदावार उगाई गई किस्म तथा उसके प्रबंधन पर निर्भर करती है। सिंचित क्षेत्रों में शुद्ध फसल से 2000-2500 कि.ग्रा./है. तक दाने की पैदावार प्राप्त होती है।

मूंग



भारत की बहुप्रचलित एवं लोकप्रिय दालों में मूंग प्रमूख है, जो गोल्डन ग्राम, सोना मूंग आदि नामों से भी जानी जाती है, जिसकी खपत देश भर में होती है। छिलकायुक्त व छिलकारहित दाल का दैनिक भोजन में प्रयोग केवल सामान्य लोगों तक ही सीमित नहीं है, अपितु रोगियों के लिए भी विशेष रूप से प्रस्तावित है। मूंग की धुली दाल नमकिन तथा मिष्ठान बनाने में प्रयुक्त होती है। इससे पापड़ और मूंगोड़ी इत्यादि भी बनाई जाती है। मूंग की फसल पशुओं के लिए हरे चारे के रूप में तथा खेतों में हरी खाद के रूप में भी प्रयोग में आती हैं। मूंग की खेती मुख्य रूप से खरीफ एवं जायद में की जाती है।

जलवायु

मूंग की फसल हर प्रकार के मौसम में उगाई जा सकती है। उत्तर भारत में इसे ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में उगाते हैं। दक्षिण भारत में इसे रबी में भी उगाते हैं। ऐसे क्षेत्र जहां 60 से 75 सें.मी. वर्षा होती है, मूंग के लिए उपयुक्त होते हैं। फली बनते तथा पकते समय वर्षा होने से दाने सड़ जाते हैं और काफी हानि होती है। उत्तरी भारत में मूंग को वसंत ऋतु (जायद) में भी उगाते हैं। अच्छे अंकुरण एवं समुचित बढ़वार हेतु क्रमशः 25° एवं 20 से 40° से. तापमान उपयुक्त होता है।

फसल प्रणाली

मूंग की मिश्रित खेती बाजरा, मक्का, ज्वार, कपास और अरहर के साथ की जाती है। उत्तरी भारत में इसके साथ अपनाये जाने वाले प्रचलित फसल चक्र: मूंग- गेहूं, मूंग-आलू, मक्का-गेहूं-ग्रीष्मकालीन मूंग और धान-गेहूं-ग्रीष्मकालीन

मूंग आदि हैं। बहुधा ऐसा देखा गया है कि ग्रीष्मकालीन मूंग की उपज वर्षाकालीन मूंग की अपेक्षा अधिक होती है क्योंकि ग्रीष्मकालीन फसल में सिंचाई के साधन का प्रयोग होने और अधिक वर्षा न होने से पानी की मात्रा संतुलित होती है। साथ ही इस मौसम में कीटों तथा रोगों का प्रकोप भी उतना उग्र नहीं होता है।

मृदा

मूंग की खेती के लिए दोमट मृदा सबसे अधिक उपयुक्त होती है। इसकी खेती मटियार ओर बलुई दोमट मृदा में भी की जा सकती है लेकिन उसमें उत्तम जल-निकास का होना आवश्यक है।

उन्नत किस्में

पकने में लगने वाले समय के आधार पर मूंग की किस्मों को अगेती, मध्यम एवं पछेती वर्गों में भी विभाजित किया गया है। पूसा संस्थान द्वारा विकसित मूंग की प्रमुख किस्मों का उल्लेख सारणी 1 में किया गया है।

सारणी 1. पूसा संस्थान द्वारा विकसित मूंग की प्रमुख किस्में

किस्म	अनुमोदित वर्ष	अनुमोदित क्षेत्र/परिस्थिति	उपज (कि.ग्रा./है.)	विशेषताएं
(क) ग्रीष्म/खरीफ मौसम में बुवाई				
पूसा विशाल	2001	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश, राजस्थान, जम्मू कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश का मैदानी क्षेत्र)/बसंत/ग्रीष्म मौसम में बुवाई के लिए	1200-1400	यह किस्म विषाणु जनित पीली चित्ती रोग की प्रतिरोधी है। यह किस्म एक साथ पकने वाली है जो बसंत के मौसम में 65-70 दिनों में और ग्रीष्म में 60-65 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।
पूसा रतना	2004	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली/ खरीफ मौसम में बुवाई के लिए	1200-1400	यह किस्म एक साथ पकने वाली है जो 65-70 दिनों में पककर तैयार हो जाती है यह किस्म विषाणु जनित पीली चित्ती रोग की सहिष्णु है।
पूसा 0672	अप्रैल 2010	उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र/ खरीफ मौसम में बुवाई के लिए	1000-1200	यह किस्म मूंग के विषाणु जनित पीली चित्ती रोग व अन्य रोगों की सहिष्णु है। इसका दाना चमकदार हरा, आकर्षक एवं मध्यम आकार का है।
(ख) खरीफ मौसम में बुवाई				
पूसा-9531	2001	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, जम्मू कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश का मैदानी क्षेत्र	800-1000	यह किस्म 60-65 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा विषाणु जनित पीली चित्ती रोग एवं कीटों की सहिष्णु है।



अन्य किस्में

मूंग की कुछ महत्वपूर्ण किस्मों एवं उनकी विशेषताएं का उल्लेख निम्नवत है:

(1) *टाइप 44:* इसका पौधा बौना होता है। तना अर्धविस्तारी और पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं। फूल पीले होते हैं। बीज गहरे हरे रंग के और मध्यम आकार के होते है। फसल पकने में 60-70 दिन का समय लेती है। यह सभी मौसमों में उगाई जा सकती है।

(2) *मूंग एस 8:* पौधा मध्यम ऊंचाई का और सीधे बढ़ने वाला होता है। तना विस्तारी होता है, फूल हल्के पीले रंग के होते हैं। फलियां 6-8 सें.मी. लम्बी, चिकनी व काली होती हैं। एक फली में 10-12 तक हरे चमकदार बीज पाए जाते हैं। फसल तैयार होने में 75-80 दिन लेती है। इसमें पीले मोजेक रोग का प्रकोप कम होता है। यह खरीफ ऋतु में उगाई जा सकती है।

(3) *मूंग जवाहर 45:* इसका पौधा लम्बा व सीधा होता है, पत्तियां हरी होती हैं। फूल पीले तथा बीज चमकदार व हरे रंग के होते हैं। फसल पकने में 80 दिन का समय लेती है। यह खरीफ के लिए उपयुक्त है।

(4) *पी एस 16:* पौधे की लम्बाई 45 सें.मी. तक होती है तथा वह सीधा बढ़ने वाला होता है। पत्तियां पीलापन लिए हुए हरे रंग की होती हैं। फूल पीले तथा बीज चमकदार हरे रंग के होते हैं। फसल तैयार होने से 60-70 दिन का समय लगता है। यह खरीफ तथा ग्रीष्म, दोनों ऋतुओं के लिए ठीक है।

(5) *पी एस 10 (कांति):* इसका पौधा भी सीधा होता है। फूल पीले बड़े आकार के धुंधले आकार के होते हैं। फसल 75 दिन में तैयार होती है। इसकी किस्म की फलियां एक साथ पकती हैं, जिसके फलस्वरूप इसकी कटाई एक साथ की जा सकती है। यह खरीफ के लिए उपयुक्त है।

(6) *मूंग पूसा बैसाखी:* यह किस्म टाइप 44 के चयन से निकाली गई है। इसका पौधा बौना तथा झाड़ीनुमा होता है। पत्तियां हरी होती हैं तथा तने में हल्के गुलाबी रंग के धब्बे होते हैं। फूल भूरा रंग लिए हुए क्रीमी रंग के तथा बीज हरे रंग के मध्यम आकार के होते हैं। पौधे पर प्रकाश की अवधि का प्रभाव नहीं पड़ता। फसल 60 से 70 दिन में तैयार हो जाती है। सभी फलियां लगभग एक साथ पकती हैं जिससे कटाई में सुविधा होती है। यह ग्रीष्म ऋतु के लिए अधिक उपयुक्त है।

(7) *पंत मूंग 1:* इसका पौधा सीधा बढ़ने वाला गहरे रहे रंग का होता है। बीज हरे रंग के मध्यम आकार के होते हैं। यह किस्म पीला मोज़ेक विषाणु एवं सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती रोग के लिए काफी हद तक प्रतिरोधी है। यह किस्म खरीफ में 70 से 75 एवं जायद में 65 से 70 दिन लेती है।

(8) *पंत मूंग 2:* इसका पौधा मध्यम ऊंचाई का होता है। पकने के लिए 60 से 65 दिनों की आवश्यकता पड़ती है। इसे खरीफ में उगाना चाहिए। खरीफ में यह 65 से 70 दिन लेती है। यह पीला मोज़ेक विषाणु रोग के लिए मध्यम प्रतिरोधी है।

(9) *पंत मूंग 3:* इसके पौधे सीधे बढ़ने वाले होते हैं। पकने के लिए 75-85 दिनों का समय लेती है। इसे खरीफ में उगाने से अधिक लाभ मिलता है। बीज चमकीले एवं मध्यम आकार के होते हैं। यह 65-70 दिन में पकती है। यह बहुरोग प्रतिरोधी प्रजाति है।



(10) *पंत मूंग 4:* इसका पौधा मध्यम ऊंचाई का होता है। यह मूंग तथा उड़द दोनों के संयोग से विकसित की गई है। बीज चमकीले हरे एवं मध्यम आकार के होते है। यह बहुरोग प्रतिरोधी प्रजाति है। इसके पकने की अवधि 65 से 70 दिन है। यह उत्तर-पूर्वी भारत के मैदानी क्षेत्रों में खरीफ मौसम के लिए अनुमोदित की गई है।

(11) *पंत मूंग 5:* यह जायद मौसम के लिए उपयुक्त है। इसके दाने चमकीले तथा बड़े आकार (1000 दानों का भार 50-55 ग्रा.) के होते हैं। फलियां गुच्छों में लगती हैं। यह उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित है। इसकी औसत उपज 15-18 क्विंटल/हैक्टेयर है।

उपरोक्त किस्मों के अतिरिक्त प्रांतवार कुछ उन्नतशील किस्में जो कि तीनों मौसमों में उगाई जाती हैं, सारणी 2 में दर्शाई गई हैं।

सारणी 2. राज्यवार मूंग की विभिन्न मौसमों के लिए अनुशंसित किस्में

राज्य	अनुशंसित किस्में		
	ख़रीफ़	रबी	गर्मी
आंध्र प्रदेश	मधिरा 429 पूसा-9072, डब्ल्यूजीजी-2, आईपीएम-02-14, ओयूएम 11-5, सीओजीजी-912	एलजीजी-460, एलजीजी-450, एलजीजी-407, टीएम 96-2	-
असम	आईपीएम 2-3, पंत मूंग 4, पंत मूंग 2, नरेंद्र मूंग 1, एसजी 1	-	एचयूएम-16, पीडीएम -139, मेहा, पंत मूंग-5, एचयूएम-12, पूसा विशाल, टीबीएम-37
बिहार और झारखंड	आईपीएम 2-3, एमएच 2-15, पंत मूंग 4, एचयूएम -1, नरेंद्र मूंग 1, पंत मूंग 2, सुनैना, पीडीएम 139, एमएच-2-15	-	एचयूएम-16, पीडीएम -139, मेहा, पंत मूंग-5, पूसा विशाल, टीबीएम-37, एचयूएम-12
गुजरात	गुजरात मूंग 3, गुजरात मूंग 4, के-851, पीकेवीएकेएम-4	-	-
हरियाणा	आईपीएम 2-3, एमएच 2-15, मुस्कान	-	एसएमएल 668, पंत मूंग 5
हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर	पूसा 672, केएम-672, केएम-2241, शालीमार मूंग-1	-	एसएमएल 1115
कर्नाटक	आईपीएम 02-14 और 2-3, एचयूएम 1, पीकेवीएकेएम-4, सीओजीजी 912, केकेएम 3, एलजीजी 460, टीएआरएम-1, ओबीजीजी 52	-	-



राज्य	अनुशंसित किस्में		
	ख़रीफ़	रबी	गर्मी
मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़	एचयूएम 1, टीजेएम 721, बीएम 4, मेहा	-	विराट, आईपीएम 205-7
महाराष्ट्र	एचयूएम 1, बीएम 2002-1, पीकेवीएकेएम -4, बीएम 4, टीएआरएम 2	-	-
ओडिशा	पीडीएम 139, ओयूएम 11-5, सीओजीजी 912, आईपीएम 2-3	पीडीएम 139, एलजीजी 460, टीएआरएम 1, ओबीजीजी 52, आईपीएम 2¬3	-
पंजाब	आईपीएम 2-3, एमएच 2-15, एमएल 818, एमएल 613	-	एसएमएल 668, आईपीएम 2-3, पंत मूंग 5
राजस्थान	एसएमएल 668, आईपीएम 2-3, आरएमजी 492, एमएच 2-15	-	एसएमएल 668, पीडीएम 139, मेहा
उत्तर प्रदेश एंव उत्तराखंड	पंत मूंग 5, पंत मूंग 4, नरेंद्र मूंग 1	-	एचयूएम 16, आईपीएम 2-3, पीडीएम 139, मेहा, एचयूएम 12
तमिलनाडु	आईपीएम 2-3, सीओ-6, टीएम 96-2, वम्बन 2, वम्बन 3	-	एडीटी-3, सुजाता (हाइब्रिड 12-4), विराट (आईपीएम 205-7)
पश्चिम बंगाल	एमएच 2-15, पंत मूंग 5, पंत मूंग 4, नरेंद्र मूंग 1	-	एचयूएम 16, आईपीएम 2-3, पीडीएम 139, मेहा, पूसा विशाल , पंत मूंग-5, टीएमबी-37, एचयूएम-16

खेत की तैयारी

खरीफ की फसल के लिए एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए और वर्षा आने पर 2 – 3 जुताई देसी हल, हैरो या कल्टीवेटर से करके खरपतवार रहित करने के उपरांत खेत को पाटा लगाकर समतल कर लें। दीमक से बचाव के लिये क्लोरपायरीफॉस (1.5% चूर्ण) को 20-25 कि.ग्रा./है. की दर से खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिला देना चाहिए। ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती के लिए रबी फसलों के कटने के तुरंत बाद खेत की तुरंत गहरी जुताई कर 4-5 दिन के लिए छोड़ कर पलेवा करना चाहिए। पलेवा के बाद 2-3 जुताइयां देसी हल या कल्टीवेटर से कर पाटा लगाकर खेत को समतल एवं भुरभुरा कर लें जिससे उसमें नमी संरक्षित रहे व बीजों का अच्छा अंकुरण हो

सके । ग्रीष्मकालीन फसल को बोने के लिए गेहूं को खेत से काट लेने के बाद केवल सिंचाई करके (बिना किसी प्रकार की खेत की तैयारी करके) मूंग बोई जा सकती है। परंतु अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए एक बार हैरो चलाकर पाटा फेर कर खेत तैयार करना ठीक रहता है।

बीज एवं बुवाई

वर्षा ऋतु की फसल को मध्य जुलाई से अगस्त के दूसरे सप्ताह तक बो लेना चाहिए। बसंतकालीन फसल फरवरी के दूसरे पखवाड़े या मार्च में बोनी चाहिए। इसी प्रकार ग्रीष्मकालीन फसल को गेहूं काटने के तुरंत बाद बो देना आवश्यक होता है क्योंकि बुवाई में एक या दो दिन की भी देरी होने से पैदावार कम हो जाती है। खरीफ की फसल को 30 से 35 सें.मी. की दूरी पर पंक्तियों में बोना चाहिए और पौधे से पौधे की दूरी लगभग 7 से 10 सें.मी. होनी चाहिए। किस्म के अनुसार इसके लिए 12 से 15 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर लगेगा। बसंत तथा ग्रीष्मकालीन ऋतु की फसल में पौधों की बढ़वार कम होती है, इसलिए 25-30 से.मी. पंक्ति से पंक्ति की दूरी पर्याप्त है। इसके लिए 20 से 25 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होगी। बीज को कवकनाशी रसायन जैसे थिरम (2 ग्रा./ कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करके बोना चाहिए। बोने के लिए सीडड्रिल अथवा देसी हल का प्रयोग किया जा सकता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

भारत के विभिन्न भागों में किसानों के खेतों पर किए गए परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि 15-20 कि.ग्रा./हैक्टेयर नाइट्रोजन देने से मूंग की बढ़वार अच्छी होती है। कम उर्वरक शक्ति वाली भूमि में 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) प्रति हैक्टेयर डालना भी आवश्यक हो जाता है।

जल प्रबंधन

ग्रीष्म व बसंत कालीन मूंग की फसल को 4 से 5 सिंचाइयां देना आवश्यक होता है। प्रथम सिंचाई बुवाई के 20 से 25 दिन बाद व अन्य सिंचाई 12 से 15 दिन के अंतर पर करें। वर्षा ऋतु की फसल की आवश्यकता अनुसार सिंचाई करें। वर्षा ऋतु की मूंग में उचित जल-निकास की व्यवस्था आवश्यक होती है।

खरपतवार प्रबंधन

बुवाई के बाद 35-40 दिन के भीतर खरपतवारों की सघनता के अनुसार एक या दो निराई-गुड़ाई पर्याप्त होती है। पहली गुडाई बुवाई के 20-25 और दूसरी 40-45 दिन बाद करनी चाहिए। यदि रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण करना है तो बुवाई के तुरंत बाद पेंडीमेथालिन के 0.75-1.00 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व की मात्रा को 500-600 लिटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़क दें तो शुरुवाती खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। खरपतवारनाशी के प्रयोग के लिए स्प्रेयर मशीन में हमेशा फ्लैट फैन नोज़ल का ही प्रयोग करना चाहिए।

कीट प्रबंधन

1. *सफ़ेद मक्खी:* सफेद मक्खी पत्तियों की निचली सतह पर दिखाई देती हैं। पत्तियों की निचली सतह पर अंडे दिए जाते हैं। इस कीट की अपरिपक्व (शिशु) व वयस्क अवस्थाएं पत्तियों की निचली सतह से रस चूसती है। यह कीट पत्तों पर हनीड्यू उत्सर्जित करते हैं। इस हनीड्यू पर काली फफूंद उगने लगती है जिसके कारण

प्रकाश संश्लेषण क्रिया बाधित होती है और पौधों की वृद्धि रुक जाती है। सफेद मक्खी पीले मोज़ेक विषाणु को भी फैलाती है।मक्का या ज्वार की फसल मूंग के चारों ओर लगाने से इस कीट का प्रभाव कम होता है। इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. (3 मि.लि./ कि.ग्रा.) से बीजोपचार तथा फसल 0.2 मि.लि. प्रति लिटर पानी की दर से छिडक़ाव करें।

2. *सूंडियां:* मूंग की फसल को नुकसान पहुंचाने वाली सूंडियों में हेलिकोवर्पा और तम्बाकू की सूंडी प्रमुख हैं। हेलिकोवर्पा की सूंडी फली में छेद कर उसका अंदर का गूदा खा जाती है और तम्बाकू की सूंडी मुख्यतः पत्तियों को बहुत तेजी से खाती है। इस कीट की निगरानी के लिए 5 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर लगाएं तथा आवश्यकतानुसार बी टी और एच एन पी वी का छिड़काव करें।

3. *बीन थ्रिप्स या रसचूसक कीट:* बीन थ्रिप्स बहुत छोटे गहरे भूरे रंग के होते हैं। इस कीट के अपरिपक्व (शिशु) व वयस्क दोनों मूंग के फूलों के अंदर घुसकर फूलों की वर्तिका को खा जाते हैं। थ्रिप्स के प्रकोप से ये फूल खिलने से पहले गिरने लगते है। इस प्रकार फूलों को खाकर थ्रिप्स एक स्वस्थ फसल को नष्ट कर सकते है। इसके प्रकोप से पौधे गहरे हरे रंग के और कमजोर हो जाते हैं। भारी प्रकोप होने पर पत्तियां मुड़ जाती है। इसका प्रकोप शुष्क अवस्था में, विशेष रूप से ग्रीष्म काल में ज्यादा होता है। प्रबंधन के लिए नियमित रूप से सिंचाई करें। नीम तेल (3000 पी.पी.एम) तथा नीम बीज सार (5%) का छिडक़ाव करें। बुवाई से पहले बीज का थायोमेथॉक्साम 70 डब्लू.एस.(2 मि.लि./ कि.ग्रा.) से उपचार करें। साथ ही खडी फसल में थ्रिप्स के नियंत्रण के लिए थायोमेथॉक्साम 25 डब्लू.जी. 0.2 ग्राम का प्रति लिटर पानी की दर से छिडक़ाव कर सकते हैं।

रोग प्रबंधन

1. *सर्कोस्पोरा पर्ण-चित्ती:* पत्तियों पर प्रायः वृत्ताकार तथा कभी-कभी कोणीय 0.5-4 मि.मी. (औसत 3-4 मि.मी.) व्यास के विक्षत प्रकट होते हैं, जिसका रंग बैंगनी-लाल तथा मध्य भाग भूरा होता है। कभी-कभी रोग ग्रस्त भागों के साथ मिलने पर पत्ती की दो शिराओं के बीच अनियमित आकार का धब्बा बन जाता है। पत्ती की ऊपरी सतह पर धब्बे अधिक स्पष्ट होते हैं। अधिक धब्बे बनने के कारण फलियों का रंग काला पड़ जाता है और रोग की उग्र अवस्था में बीज भी संक्रमित हो जाते हैं। तनों पर बड़े आकार की चित्तियां बन जाती हैं।



सर्कोस्पोरा पर्ण-चित्ती रोग

रोग के लक्षण दिखाई देने पर 0.05 प्रतिशत बाविस्टीन या 0.2 प्रतिशत जिनेब का छिड़काव करना चाहिए। 500-600 लिटर घोल एक हैक्टेयर के लिए पर्याप्त होता है तथा इसे 7-10 दिन के अंतराल पर दोहराते हैं। कुल 3-4 छिड़कावों से रोग का अच्छा नियंत्रण होता है। खेत में पड़े अवशेषो को निकालकर जलाने से आरंभिक निवेश द्रव्य की मात्रा कम हो जाती है।

2. *पीला मोज़ेक विषाणु रोग:* पीली कुर्बरता के रूप में यह रोग मूंग की रोग-ग्राही प्रजातियों में अधिक व्यापक होता है। नई उगती हुई पत्तियों में प्रारंभ से ही कुर्बरता के लक्षण दिखाई देते हैं। जिन पत्तियों में पीली कुर्बरता या पीली ऊतकक्षय कुर्बरता के मिले-जुले लक्षण दिखाई देते हैं, उनके आकार छोटे रह जाते हैं। ऐसे पौधों में बहुत कम व छोटी फलियां होती हैं। ऐसी फलियों का बीज सिकुड़ा हुआ और मोटा व छोटा होता है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है। इसलिए यह रोगवाहक सफेद मक्खी की रोकथाम से नियंत्रित हो सकता है। खेत में ज्यों ही रोगी पौधे दिखाई दे, डायमेथाक्साम (एक्टाश) या इमिडाक्लोप्रिड 0.02 प्रतिशत का छिड़काव कर दें। छिड़काव को 15-20 दिन के अंतर पर दोहरायें और कुल 3-4 छिड़काव करें। छिड़काव के 24 घंटे के बाद रोगी पौधे को उखाड़ कर जला देना चाहिए। प्रति हैक्टेयर 500-600 लिटर में बना घोल पर्याप्त होता है।



पीला मोज़ेक विषाणु रोग

3. *झुर्रीदार पत्ती (मुड़ी पत्ती) रोग:* यह रोग उड़द बीन लीफ क्रिंकल विषाणु के द्वारा होता है। रोग का वाहन चूसक कीटों (माहू तथा फुदका) द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप खरीफ़ की फसल मैं अधिक होता है। रोग से प्रभावित पर्त्तियों का आकार स्वस्थ पत्तियों की अपेक्षा बड़ा होता है। पत्तियों की की सतह पर सिकुड़न (झुर्री) होना रोग का मुख्य लक्षण है। रोग ग्रसित पौधो में पुष्पीकरण देर से या न के बराबर होता है और पुष्प झाड़ीनुमा तथा व गुच्छेदार हो जाते हैं। रोग ग्रसित पौधो में बहुत कम फलियां आती हैं जिसके कारण उपज में भारी कमी आ जाती है। रोग का लक्षण अनियमित हल्के हरे क्षेत्र के रूप में पत्तियों पर प्रकट होता है। पत्तियां विरूपित होकर, आकार में छोटी हो जाती हैं और किनारे की ओर मुंह मोड़ लेती है। इस रोग की रोकथाम के निम्न उपाय किये जा सकते हैं।

- रोगी पौधे से प्राप्त बीज को उपयोग में नहीं लाना चाहिए।
- ज्यों ही रोग के लक्षण दिखाई दें रोगी पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिए।

- खेती की सफाई हेतु खरपतवार निकालते रहें तथा कीटों का नियंत्रण करना चाहिए।
- रोग वाहक कीटों के नियंत्रण के लिए डाईमेथोएट 30 ई.सी. की 1.7 मि.लि. प्रति लिटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।



झुर्रीदार पत्ती (मुड़ी पत्ती) रोग

कटाई एवं गहाई

वर्षा ऋतु में जब पौधों की अधिकतर फलियां पककर काली हो जाती हैं तो फसल काटी जा सकती है। ग्रीष्म तथा बसंतकालीन फसलों में जब 50 प्रतिशत फलियां पक जाएं, फलियों की पहली तुड़ाई कर लेनी चाहिए। इसके बाद दूसरी बार फलियों के पकने पर कटाई की जा सकती है। फलियों को खेत में सूखी अवस्था में अधिक समय तक छोड़ने से वे चटक जाती हैं और दाने बिखर जाते हैं जिससे उपज की हानि होती है। फलियों से बीज को समय पर निकाल लेना चाहिए। गहाई अथवा मड़ाई के लिए डंडों से पीट कर या बैंलो को चलाकर दाना अलग कर लेते है। वर्तमान में मूंग की थ्रेसिंग हेतु थ्रेसर का उपयोग कर गहाई का कार्य किया जा सकता है।

उपज

वर्षा ऋतु की फसल से प्रति हैक्टेयर 1000-1200 कि.ग्रा. पैदावार मिल जाती है। ग्रीष्मकालीन फसल में समुचित प्रबंध द्वारा 1000 से 1500 कि.ग्रा. तक पैदावार लेना संभव है। साथ ही लगभग 1500-2000 कि.ग्रा. सूखा चारा/भूसा भी प्राप्त हो जाता है।

उड़द



उड़द दलहनी कुल की एक उपयोगी फसल है। देश में उगाई जाने वाली विभिन्न दलहनों में उड़द का महत्वपूर्ण स्थान आता है। जनसंख्या का अधिकांश भाग शाकाहारी होने के कारण प्रोटीन की पूर्ति दालों से ही होती है। सभी दालों में उड़द की दाल में सबसे अधिक प्रोटीन होता है। इसका उपयोग विशेष रूप से पौष्टिक आहार के रूप में किया जाता है। उड़द की दाल में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन तथा विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण पोषक पाए जाते हैं: प्रोटीन 24%, वसा 1.4%, कैल्शियम 154 मि. ग्रा., फॉस्फोरस 385 मि.ग्रा. एवं रेशा 0.009%। देश में उड़द उत्पादन 2.05 मिलियन टन, क्षेत्रफल 3.21 मिलियन हैक्टेयर तथा औसत उत्पादकता प्रति हैक्टेयर 640 कि.ग्रा प्रति हैक्टेयर है। उत्पादन में मध्य प्रदेश की हिस्सेदारी सबसे अधिक (24%) 4.73 लाख टन, इसके बाद उत्तर प्रदेश (10%) 4.42 लाख टन और आंध्र प्रदेश 3.33 लाख टन (7%) का स्थान है।

उड़द की फसल कम समय मे पककर तैयार हो जाती है। इसकी फसल खरीफ, ग्रीष्म मौसम (उत्तर भारत) तथा देश के कुछ राज्यों में रबी ऋतु में भी उगाई जाती है। हमारे देश में उड़द का उपयोग प्रमुख रूप से दाल के रूप में किया जाता हैं। उड़द की दाल व्यंजन जैसे कचौड़ी, पापड़, बड़ी, बड़े, हलवा इमरती, पूरी, इडली, डोसा, आदि भी तैयार किये जाते हैं। उड़द के हरे एवं सूखे पौधों से उत्तम पशु चारा प्राप्त होता है। उड़द की फसल को हरी खाद के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। इसके अलावा उड़द दलहन फसल होने के कारण वायुमण्डल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके भूमि की उर्वरा शक्ति मे वृद्धि करती है। इसके साथ ही उड़द को उगाने से खेत मे पत्तियां एवं जड़ रह जाने के कारण भूमि में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है।

जलवायु

उड़द एक उच्च तापक्रम सहन करने वाली उष्ण जलवायु की फसल है। इसकी अच्छी वृद्धि और विकास के लिए 25-35^0 से. तापमान आवश्यक है, परन्तु यह 42^0 डिग्री से. तक तापमान को यह फसल सहन करने की क्षमता रखती है। अधिक जलभराव वाले स्थानों में इसे नहीं उगाना चाहिए।

फसल प्रणाली

उड़द कम अवधि व कम बढ़वार वाली फसल होने के कारण इसे ऊंची बढ़वार वाली फसलों के साथ उगाया जा सकता है। इसी कारण इसका अन्तः फसलन प्रणाली में अच्छा स्थान माना जाता है। खरीफ काल की कुछ फसलें जिनके साथ उड़द को उगाया जा सकता है: अरहर+उड़द, बाजरा+उड़द, सूरजमुखी + उड़द, मक्का + उड़द, गन्ना + उड़द, आदि।

शरदकालीन उड़द को अनेक सस्यक्रमों में उगाया जा सकता है। ऐसे क्षेत्र जहां सिंचाई की सुविधा सीमित हो, एकल फसल के रूप में उगाना उत्तम होता है। कुछ एक वर्षीय फसल चक्र जिनके साथ उड़द को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है; धान-गेहूं-उड़द, आलू-गेहूं-उड़द, अरहर-गेहूं-उड़द, मक्का-आलू-गेहूं-उड़द, मक्का-उड़द-गेहूं, आदि।



मृदा

उड़द को रेतीली मृदा से लेकर भारी कपास मृदा तक विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है। सबसे आदर्श मृदा 6.5 से 7.8 पी.एच. मान वाली दोमट मृदा होती है। साथ ही इसमें जल निकासी की भी पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। क्षारीय और लवणीय मृदा इस फसल की खेती के लिए अनुपयुक्त होती हैं।

उन्नत किस्में

उड़द की प्रमुख उन्नत किस्में विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार नीचे सारणी 1 में दर्शाई गई हैं।

सारणी 1. उड़द की उन्नतशील किस्में

क्रं.सं.	उन्नत किस्में	संस्तुत क्षेत्र / विशेषता	उत्पादन क्षमता (कि.ग्रा./है.)
1.	टाइप 9, टाइप 19	उड़द उगाने वाले समस्त राज्य	1000-1500
2.	पंत उड़द 30	पहाड़ी क्षेत्रों के लिए, साथ ही पीला मौजेक के प्रतिरोधी	1000-1200
3.	पंत उड़द 40	उड़द उगाने वाले सभी क्षेत्रों तथा अंतःफसलों के साथ उगाने के लिए	1000-1300
4.	नरेंद्र उड़द 1	उड़द उगाने वाले समस्त क्षेत्र	1000-1200
5.	शेखर 2	महाराष्ट्र, हरियाणा, पंजाब	1000-1400
6.	पंत उड़द 35	खरीफ व जायद दोनों मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त	1000-1400
7.	जवाहर उड़द-2	मध्य प्रदेश के लिए उपयुक्त, बीज मध्यम छोटा, चमकीला काला, तने पर ही फलियां पास-पास गुच्छों में लगती है।	1000-1100
8.	पीडीयू 1 (बसंत बहार)	उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र एवं मध्य क्षेत्र	1200-1400
9.	आईपीयू 94-1 (उत्तरा)	उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र एवं उत्तर-पूर्वे क्षेत्र	1000-1200
10.	आईपीयू 2-43	दक्षिणी क्षेत्र	1000-1200
11.	आईपीयू 11-02	मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश	1000-1200
12.	आईपीयू 10-26	मध्य प्रदेश	1000-1200
13.	टीपीयू-4	मध्य प्रदेश एवं गुजरात	700-1300
14.	आजाद उरद-2	उत्तर प्रदेश	900-1000
15.	एल बी जी 623	आंध्र प्रदेश	1000-1200
16.	ट्रॉम्बे जवाहर उरद 339	मध्य प्रदेश	1300-1600
17.	द्रसटि (आईपीयू 17-2)	मध्य प्रदेश	1000-1200
18.	पंत उर्द -11 (पीयू 13-05)	उत्तराखंड के मैदानी क्षेत्र	1200-1400
19.	फुले वसु (पीयू-0609-43)	महाराष्ट्र	1200-1500
20.	गुजरात आनंद उर्दबीन 4	गुजरात	961
21.	एसबीसी 47	असम	1400-1600
22.	एएयू एसपीसी 101	असम	1300-1400

खेत की तैयारी

खेत की अच्छी तैयारी फसल के अच्छे अंकुरण व फसल में एक समानता के लिए बहुत जरूरी होती है। भारी मृदा की तैयारी में अधिक जुताई की आवश्यकता होती है। सामान्यतः 2-3 जुताई करने के बाद खेत को पाटा लगाकर समतल कर लेना चाहिए जिससे खेत बुवाई के योग्य बन जाता है। ध्यान रहे कि जल निकास नाली की व्यवस्था अवश्य करें।



बीज एवं बुवाई

खरीफ की बुवाई का उचित समय मध्य जून से मध्य जुलाई तक माना जाता है। बुवाई में देरी करने से उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। गर्मी की बुवाई के लिए मार्च का महीना अधिक उपयुक्त होता है। रबी की बुवाई का उचित समय मध्य अगस्त से मध्य सितंबर तक अच्छा माना गया है। इससे उपज भी अच्छी प्राप्त होती है। खरीफ में बुवाई के समय पंक्तियों का अंतर 30 से 45 सें.मी. और पौधे से पौधे का अंतर 5 से 10 सें.मी. सही रहता है। खरीफ की बुवाई के लिए 12 से 15 कि.ग्रा./हैक्टेयर बीज पर्याप्त रहता है। गर्मी की बुवाई के लिए 20 से 25 कि.ग्रा./हैक्टेयर बीज आवश्यक होता है। अधिक बीज दर रखने से पौधों की वृद्धि एवं विकास अच्छा नहीं होता है और साथ ही पैदावार पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बुवाई से पूर्व बीज का उपचार राइजोबियम और पी एस बी के टीकों से करना चाहिए जिससे उपज में बढ़ोतरी होती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

उड़द की प्रारंभिक अवस्था में अच्छी वृद्धि के लिए 15 से 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टेयर बुवाई के समय देना आवश्यक होता है। उड़द की अधिक उपज के लिए नाइट्रोजन के साथ-साथ 40 से 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) और 30 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$)/हैक्टेयर का प्रयोग करें।

जल प्रबंधन

उड़द की फसल को फूल एवं दाना भरने के समय नमी की कमी नहीं होने देना चाहिए। उड़द की अच्छी पैदावार लेने के लिए 4-5 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। सिंचाई क्रांतिक अवस्था पर करें तो बहुत अच्छा रहता है। पुष्पावस्था व फलियों में दाना बनते समय सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। ध्यान रखें कि खेत में अधिक पानी खड़ा रहने से जड़ों की ग्रंथियों (नाइट्रोजनधारी) का पर्याप्त विकास नहीं होता है और परिणामस्वरूप उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

खरपतवार प्रबंधन

उड़द की फसल को नुकसान करने वाले खरपतवार जैसे सांवा, क्रेब, घास, सांठी, मोथा, कनकुआ, जंगली जूट, मुरेल सतुर्मुर्ग-दुद्धी, सैंजी, लटजीरा, आदि हैं। इन खरपतवारों की सही समय पर रोकथाम अति आवश्यक होती है।

इनकी रोकथाम के लिए बुवाई के 25 से 30 दिन बाद अर्थात पहली सिंचाई के बाद, निराई व निकाई करके नियंत्रित कर लेना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर खरपतवारनाशी रसायनों का उपयोग भी कर सकते हैं। खरपतवारनाशी जैसे एलाक्लोर या पेन्डिमीथेलीन @ 1.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर सक्रिय तत्व का 400-500 लिटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के बाद एवं अंकुरण से पूर्व करना चाहिए।

कीट प्रबंधन

1. *पत्ती मोड़क कीट (इल्ली):* इल्लियां अथवा सूंडियां पत्तियों को ऊपरी सिरे से मध्य भाग की ओर मोड़ती है। यही इल्लियां कई पत्तियों को चिपका कर जाला भी बना देती हैं। इल्लियां इन्हीं मुड़े भागों के अंदर रहकर पत्तियों के हरे पदार्थ (क्लोरोफिल) को खा जाती हैं जिससे पत्तियां पीली सफेद पड़ने लगती हैं। कभी-कभी क्षति प्रकोप अधिक होने पर पत्तियों की शिरायें ही बाकी रह जाती हैं। रोकथाम के लिए क्वीनालफास की 2 मि.लि./ लि. पानी की मात्रा का छिड़काव करना चाहिए।

2. *सफेद मक्खी:* ये हल्का पीलापन लिए हुए सफेद रंग के कीट होते हैं। इस कीट के प्रौढ़ एवं शिशु दोनों ही हानिकारक अवस्थाएं हैं। यह कीट अपनी लार से विषाणुओं को विषाणु-ग्रसित पौधों से स्वस्थ पौधों तक पहुंचाता है। कुल मिलाकर यह कीट फसल को सीधे हानि पहुंचाने के साथ-साथ फसल में पीले मौजेक नामक बीमारी को फैलाने का भी कार्य करता हैं। पीले रोग ग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें तथा फसल पर डायमेथोएट 30 ई.सी. 2 मि.लि./लिटर पानी के साथ घोल बनाकर छिड़काव करें।

3. *पत्तियां भेदक इल्लियां:* विभिन्न प्रकार की इल्लियां उड़द व मूंग की पत्तियों को क्षति पहुंचाकर उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। इसमें बिहार रोमिल इल्ली, लाल रोमिल इल्ली, तम्बाकू, इल्ली अर्द्ध गोलाकार (सेमीलूक) इल्ली आदि पत्ती भक्षक इल्लियां हानि पहुँचाती हैं। इस दशक में बिहार रोमिल इल्ली प्रमुख रूप से क्षति कारक हैं।

4. *बिहार रोमिल इल्ली:* इस कीट का प्रौढ़ मध्यम आकार का तथा प्रौढ़ के पंख भूरे पीले रंग के होते हैं। प्रौढ़ पंख में किनारे लाल रंग के एवं अग्र पंख जोड़ों पर काले धब्बे होते हैं। इल्लियां छोटी अवस्था में झुण्ड में रहकर पत्तियों को खाती हैं जिससे पत्ती पर जाला नुमा आकृति बन जाती है। बड़ी इल्लियां फसल में फैलकर पत्तियों में अत्यधिक क्षति पहुँचाती हैं। इनके शरीर पर घने बाल या रोय होते हैं। जिस कारण इन्हें "कंबल कीट" भी कहा जाता है। अत्यधिक प्रकोप की स्थिति में पौधे पत्ती विहीन होकर केवल ढांचे के रूप में रह जाते हैं। इनके प्रकोप से पौधे में दाने छोटे व उपज कम हो जाती है।

रोग प्रबंधन

1. *पीला मौजेक:* यह एक विषाणु-जनित रोग है जिसमे पत्तियों में पीलापन आ जाता है। सफेद मक्खी एक रोगित पौधे से स्वस्थ पौधे तक विषाणु को स्थानांतरित करती है। इसकी रोकथाम के लिए बीज उपचार क्रुजर या गऊचो 4 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. की दर से करें। पर्णीय छिड़काव एक्टारा या कन्फीडोर 0.02 प्रतिशत का बुवाई के 30 दिन उपरांत करें, और रोग अवरोधी किस्मों को उगाना चाहिए।



2. *पर्ण धब्बा रोग:* यह पत्तियों पर धब्बे होने से पहचानी जा सकती हैं। इसकी रोकथाम के लिए कैपटान अथवा जिनेब 2.5 ग्रा. दवा/लिटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

3. *जड़ गलन:* पौधा उखाड़ने पर जड़ों में जड़ गलन का लक्षण दिखाई देता है। इसकी रोकथाम के लिए बीज को थिरम अथवा कैपटान @2.5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज से उपचारित करें।

4. *एन्थ्रेकनोज:* इसका प्रभाव पत्तियों एवं तने पर देखा जा सकता है। इसके अधिक प्रभाव से पैदावार में भारी कमी आ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए थिरम 2-3 ग्रा/कि.ग्रा. बीज अथवा 0.2 प्रतिशत जिनेब का 10 दिन के अंतराल पर 1-2 छिड़काव करने से इसका नियंत्रण सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

5. *चूर्णल आसिता रोग:* यह उड़द का भयंकर रोग है। सफेद पाउडर पत्तियों पर आ जाता है। बाद में तने पर फैल जाता है जिससे पैदावार में गिरावट आ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए कार्बेन्डाजिम अथवा बेनेमिल का छिड़काव करना चाहिए। रसायन की 2 ग्रा. मात्रा/लिटर पानी में घोल बनाकर खड़ी फसल में समान रूप से छिड़काव करें।

कटाई एवं गहाई

फसल की कटाई बुवाई के समय और किस्म पर निर्भर होती है। जैसे-जैसे फलियां पकती जाएं उनकी तुड़ाई करते रहें और यदि ऐसी किस्म है कि फलियां एक साथ पक रही हैं तो ऐसी स्थिति में हंसिया से कटाई करें। जब फसल पूर्ण रूप से सूख जाए तब थ्रेशर से गहाई कर सकते हैं। ध्यान रहे कि दाने में 10-12 प्रतिशत तक नमी होनी चाहिए।

उपज

अच्छी प्रकार प्रबंधन की गई फसल से 1000 -1500 कि.ग्रा./ हैक्टेयर तक दाने की उपज आसानी से मिल जाती है।



लोबिया

लोबिया उष्ण और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में अधिकतर वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण खाद्य फलीदार फसलों में से एक है। इसकी खेती एशिया, अफ्रीका, मध्य और दक्षिण अमेरिका के क्षेत्र और दक्षिणी यूरोप के कुछ हिस्सों में दाने, सब्जी, चारे, हरी खाद तथा आवरण फसल के प्रयोग हेतु उगाई जाती है। लोबिया एक दलहनी फसल होने के कारण इसको विभिन्न फसलों जैसे मक्का, बाजरा, बेबीकोर्न, गन्ना, अरहर, कपास इत्यादि फसलों तथा बगीचों एवं सस्य वानिकी के साथ दो पंक्तियों के मध्य अंतर-फसल के रूप में उगाकर अतिरिक्त उत्पादन एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

लोबिया का दाना, फली तथा पौधा पोषक तत्वों से भरपूर होता है। इसके 100 ग्रा. सूखे दानों (बीजों) में लगभग 335 कैलोरी ऊर्जा, 22- 23 ग्रा. प्रोटीन, 60.03 ग्रा. कार्बोहाइड्रेट, 1.26 ग्रा. कुल वसा, 10.5 ग्रा. आहारीय फाइबर, 110 मि.ग्रा. कैल्शियम, 8.25 मि.ग्रा. आयरन, 420 मि.ग्रा. फॉस्फोरस, 1110 मि.ग्रा. पोटैशियम, 3.35 मि.ग्रा. जिंक, 185 मि.ग्रा. मैग्नीशियम तथा 1.52 मि.ग्रा. मैंगनीज पाया जाता है। इसके अतिरिक्त राइबोफ्लेविन, थियामिन, विटामिन-सी, नियासिन एवं फोलेट्स विटामिन का उत्कृष्ट स्रोत है। लोबिया की कोमल फलियां सब्जी के रूप में तथा सूखी फलियों के दानों को दाल के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसकी 100 ग्रा. हरी कोमल फलियों में 4.3 ग्रा. प्रोटीन, 2.0 ग्रा. फाइबर, 8.0 ग्रा. कार्बोहाइड्रेट, 74 मि.ग्रा. फॉस्फोरस, 2.5 मि.ग्रा. आयरन, 13.0 मि.ग्रा. विटामिन-सी, 0.9 मि.ग्रा. खनिज पदार्थ आदि होते हैं।

लोबिया के ताजा बायोमास (जैवभार) का पोषक मूल्य (सूखे भार के आधार पर) पाचन क्रूड प्रोटीन 12-15%, कुल सुपाच्य पोषक तत्व 60%, कैल्सियम और फॉस्फोरस की मात्रा क्रमशः 1.40 और 0.35% पाई जाती है। अत: लोबिया



एक बहुमुखी फसल है जो मनुष्यों के लिए भोजन के रूप में, पशुओं के लिए चारे के रूप में और भूमि के लिए उसकी उर्वरता एवं सरंक्षण के लिए विश्व के अनेक देशों में उगाई जाती है।

विश्व स्तर पर लोबिया की खेती 12.5 मिलियन हैक्टेयर भूमि में की जाती है तथा प्रति वर्ष लगभग आठ मिलियन टन दाने का उत्पादन होता है। दुनिया के कुल लोबिया उत्पादन में अफ्रीका का लगभग 80% योगदान होता है। भारतीय संदर्भ में लोबिया की खेती मुख्य रूप से पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और पश्चिम उत्तर प्रदेश के शुष्क और अर्धशुष्क इलाकों के साथ-साथ राजस्थान, मध्य प्रदेश, ओडिशा, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और गुजरात के काफी क्षेत्रों में की जाती है। भारत में लोबिया की खेती का कुल क्षेत्रफल 1.5 मिलियन हैक्टेयर है और इसका कुल उत्पादन लगभग 0.52 मिलियन टन होता है। लोबिया की औसत उत्पादकता अन्य दालों की तुलना में काफी कम है जो लगभग 350 कि.ग्रा./हैक्टेयर है। देश में कुल दालों का उत्पादन बढाने में लोबिया की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। अतः लोबिया की खेती उन्नत तकनीकियों के प्रयोग करने से इसकी औसत उपज को आसानी से बढाया जा सकता है।

जलवायु

लोबिया के लिए गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है और लोबिया की फसल को ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में आसानी से उगाया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहां इसकी बुवाई ग्रीष्म ऋतु में एकल अथवा अंतर्फसल के रूप में फरवरी या मार्च माह में की जा सकती है। लोबिया को उगने के लिए 8-10^0, वृद्धि के लिए 25-35^0 तथा पकने के लिए 30 से 35^0 सेल्सियस तापमान उचित रहता है। इसको सूखे को सहन करने की सापेक्ष क्षमता के लिए जाना जाता है। लोबिया को औसतन 300 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में बलुई दोमट से दोमट मिट्टी में पीएच > 6 या तटस्थ में उगाया जा सकता है।

फसल प्रणाली

लोबिया ऐसी फसल है जो विभिन्न फसल चक्रों तथा अंतर्फसल प्रणाली में समायोजित की जा सकती है जैसे: मक्का -गेहूं -लोबिया, धान -गेहूं -लोबिया, लोबिया-गेहूं-चीना, मक्का -आलू -लोबिया, मक्का -तोरिया -गेहूं -लोबिया (सभी फसल चक्र दाने एवं सब्जी हेतु), जवार +लोबिया -सरसों -लोबिया, मक्का +लोबिया -जई -लोबिया , बेबीकॉर्न+लोबिया -बरसीम -लोबिया, बाजरा +लोबिया-जई -लोबिया तथा लोबिया-जई-मक्का (चारे हेतु)।

मृदा

लोबिया विभिन्न प्रकार की मृदाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके लिए बलुई, बलुई दोमट, दोमट तथा हल्की मृदाएं उचित रहती है। खेत में जल निकास की उचित वयस्था होनी चाहिए तथा भूमि का पी.एच. मान 5 से 7 उचित रहता है।

उन्नत किस्में

लोबिया की खेती से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उन्नत किस्मों का प्रयोग आवश्यक है। देश में विभिन्न अनुसंधान संस्थानों तथा कृषि विश्वविद्यालयों के द्वारा देश के अलग-अलग क्षेत्रों के लिए अनेक किस्में (सारणी 1 एवं 2) विकसित की गई हैं।



सारणी 1. लोबिया की दाने की प्राप्ति हेतु संस्तुत किस्में

किस्म का नाम	पकने की अवधि (दिन)	उपज (कि.ग्रा./है.)	खेती के लिए उपयुक्त राज्य	विशेषताएं
पूसा धरणी	75-80	1500-1600	हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश	सिंचित एवं वर्षा आधारित क्षेत्रों हेतु, गोल्डन मोज़ेक वायरस के लिए प्रतिरोधी, ख़रीफ़ और ग्रीष्म ऋतु में उगाई जा सकती है ।
पूसा सुकोमल	70-75	1400-1600	हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश	पौधे झाड़ीदार, 45 दिन में फूल। फलियां हल्की हरी, 25-30 सें.मी. लंबी। जीवाणु झुलसा के लिए प्रतिरोधी।
पंत लोबिया-5 (पीजीसीपी-12)	65-70	1600-2000	राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, केरल, गुजरात, हरियाणा	यह माहू, थ्रिप्स और ब्रुचिड्स के प्रति सहिष्णु तथा काऊपी येलो मोज़ेक वायरस (लोबिया पीला मोज़ेक विषाणु) के लिए प्रतिरोधी है। इसमें 23 से 25% प्रोटीन होती है। ख़रीफ़ और ग्रीष्म ऋतु में उगाई जा सकती है।
पंत लोबिया 4 (पीजीसीपी-14)	60-65	1400-1800	राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, केरल, गुजरात, बिहार, झारखण्ड, हरियाणा	इसमें प्रमुख जीवाणुओं के प्रति सहनशीलता है। पीला मोज़ेक जैसी विषाणु-जनित बीमारियों, चित्र असंवेदनशील और सूखा सहिष्णु है।
हिसार लोबिया-46 (एचसी 98-46)	65-70	1000-1200	हरियाणा, पंजाब	यह लोबिया पीला मोज़ेक विषाणु के लिए प्रतिरोधी तथा सूखा सहिष्णु है।
सी 519 (हिमाचल) लोबिया 11)	80-85	1500-1600	हिमाचल प्रदेश	सर्कोस्पोरा लीफ स्पॉट (पर्ण चित्ती) के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी। वर्षा आधारित उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र।
सी-475 (हिमाचल) लोबिया 1)	70-75	2100-2200	हिमाचल प्रदेश	सर्कोस्पोरा लीफ स्पॉट (पर्ण चित्ती) के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी।
करण चांवला 1 (सीपीडी 119)	70-75	1000-1200	राजस्थान	नमी के तनाव के प्रति सहनशील। मोज़ेक के विरुद्ध प्रतिरोधी, परिगलन, जड़ सड़न और सीएलएस, फली छेदक, माहू और पत्ती फुदकों का कम प्रकोप। वर्षा आधारित/ सिंचित दोनों स्थितियों के लिए उपयुक्त।
जीसी 6 (जीसी 521)	70-75	1100-1200	गुजरात	शीघ्र परिपक्वता।

वीबीएन-3 (वीसीपी 09-013)	75-80	1000-1200	तमिलनाडु	एन्थ्रेक्नोज रोग, फली छेदक के लिए प्रतिरोधी ।
सीएल 367	75-80	1000-1200	पंजाब	यह दोहरे उद्देश्य वाली किस्म है जो चारे के साथ-साथ दाने के लिए भी उपयुक्त है। यह पीला मोज़ेक वायरस और एन्थ्रेक्नोज रोग के प्रति सहनशील है। इसमें बड़ी संख्या में फलियां आती हैं।

सारणी 2. लोबिया की सब्जी (हरी फली) प्राप्ति हेतु संस्तुत किस्में

किस्म का नाम	हरी फली तैयार होने की अवधि (दिन)	हरी फलियों की उपज (टन/है.)	खेती के लिए उपयुक्त राज्य	विशेषताएं
पूसा धरणी	50-60	7.0-8.0	हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश	सिंचित एवं वर्षा आधारित क्षेत्रों हेतु, गोल्डन मोज़ेक वायरस के लिए प्रतिरोधी। ख़रीफ़ और ग्रीष्म ऋतु में उगाई जा सकती है।
पूसा सुकोमल	45-60	5.5-6.0	हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश	पौधे झाड़ीदार, 45 दिन में फूल। फलियां हल्की हरी, 25-30 सें. मी. लंबी। जीवाणु झुलसा के लिए प्रतिरोधी।
काशी कंचन (वीआरसीपी-4)	50-55	7.0-8.0	पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश	फलियां लगभग 30-35 सें.मी. लंबी, गहरे हरे रंग की, मुलायम, मांसल और चर्मपत्र से मुक्त होती हैं। गोल्डन मोज़ेक वायरस और स्यूडोसेरकोस्पोरा क्रुएंटा के लिए प्रतिरोधी है।

चारे के लिए उन्नत किस्में: चारे के लिए लोबिया एक बहुत ही पोषक तत्वों से भरपूर फसल है। हरे चारे की अनेक उन्नत किस्मों जैसे जीएफसी 1, जीएफसी 2, जीएफसी 3, जीएफसी 4, बुंदेल लोबिया-1, यूपीसी-287 और यूपीसी-5286, रशियन जाइंट, के-395, आईजीएफआरआई- 5450 (कोहिनूर), सी-88, यूपीसी 5287, यूपीसी-4200, यूपीसी 618, यूपीसी 62, यूपीसी 622, यूपीसी 625, यूपीसी 628, सी ओ 5, सी ओ ऍफ़ सी 8, इत्यादि महत्वपूर्ण किस्में हैं। इन किस्मों को खरीफ तथा जायद ऋतु में उगाकर 50 से 55 दिनों में 15 से 20 टन/हैक्टेयर हरे चारे की उपज प्राप्त की जा सकती है।

खेत की तैयारी

लोबिया के लिए खेत को अच्छी प्रकार से तैयार कर लेना चाहिए। जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बनाकर तैयार तैयार करना चाहिए। खेत की एक जुताई हैरो तथा एक कल्टीवेटर से करने के बाद पाटा लगाकर खेत को खरपतवार रहित तथा समतल बनाकर बुवाई के लिए तैयार करना चाहिए। जुताई की गहराई 15 से 20 सें.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। लोबिया की खेती संरक्षित खेती के अंतर्गत शून्य जुताई तथा बिछावन का प्रयोग करके भी सफलतापूर्वक की जा सकती है।

बीज एवं बुवाई

बुवाई के लिए उन्नत किस्म का साफ़ एवं स्वस्थ बीज अथवा प्रमाणित बीज को बुवाई के लिए प्रयोग में लाना चाहिए। बुवाई से पहले बीज को 10 ग्रा. राइजोबियम कल्चर प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करके बुवाई करना बेहतर होता है। एक हैक्टेयर क्षेत्र में लोबिया की बुवाई हेतु लगभग 35-40 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। बुवाई करने पर पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. उचित रहती है। अधिक वृद्धि की किस्मों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सें. मी. भी रक्खी जा सकती है। पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. पर्याप्त होती है। अंतर्फसल के अंतर्गत लोबिया की योजक और प्रतिस्थापन श्रृंखला को अपनाकर बुवाई की जा सकती है।

लोबिया की बुवाई समतल क्यारी की अपेक्षा मेड एवं कूंड तथा चौड़ी क्यारी विधि में करने से नमी अधिक दिनों तक संचित होती है तथा वर्षा आधारित क्षेत्रों में अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है। बुवाई के समय खेत में उचित नमी होने पर फसल का जमाव अच्छा होता है तथा पौधों की उचित संख्या बनी रहती है। खरीफ फसल की पहाड़ी परिस्थितियों में मानसून की शुरुआत होने पर जून-मध्य से जुलाई मध्य तथा ग्रीष्म ऋतु में फ़रवरी मध्य से मार्च मध्य तक लोबिया की बुवाई करना उचित रहता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

लोबिया की फसल दलहनी होने के कारण वायुमंडल से नाइट्रोजन प्राप्त करने की क्षमता रखती है तथा इसको अन्य फसलों की अपेक्षा नाइट्रोजन की कम मात्रा की आवश्यकता होती है। बुवाई से पहले तथा भूमि की तैयारी के समय 5 टन/हैक्टेयर की दर से गोबर की खाद या कंपोस्ट खाद को मिट्टी में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिए। इसके बाद बुवाई के समय 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 से 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) तथा 40 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) की मात्रा प्रयोग करनी चाहिए।

जल प्रबंधन

ख़रीफ़ ऋतु में उगाई गई फसल को आमतौर पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है, लेकिन वर्षा न होने की स्थिति में फसल को जीवन रक्षक सिंचाई के रूप में, विशेषकर फूल आने से पहले और फली बनने की अवस्था में सिंचाई करनी चाहिए। ग्रीष्मकालीन फसल को 10 से 15 दिन के अंतराल पर नियमित रूप से सिंचाई करनी चाहिए। ग्रीष्मकालीन फसल के लिए 3-4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। लोबिया की फसल के लिए जल भराव नहीं होना चाहिए, अन्यथा फसल को हानि होने की अधिक संभावना रहती है।



खरपतवार प्रबंधन

खरीफ ऋतु में लोबिया की फसल में ग्रीष्मकालीन फसल की अपेक्षा खरपतवारों की अधिक समस्या रहती है। लोबिया की फसल में अनेक प्रकार के नुकीली तथा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार फसल के पौधों के साथ नमी, पोषक तत्व एवं प्रकाश तथा स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करके उपज में हानि करते हैं। लोबिया की फसल में खरपतवारो की प्रतिस्पर्धा द्वारा 30 से 60 प्रतिशत तक उपज में हानि हो जाती है। इसलिए खरपतवारो का उचित समय पर नियंत्रण आवश्यक है।

लोबिया की फसल में खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए पेंडिमेथालिन नामक खरपतवारनाशी की बाजार में उपलब्ध (व्यवसायिक उत्पाद) 3.33 लिटर मात्रा का 500 लिटर पानी में घोल बनाकर खरपतवार उगने से पहले (बुवाई के 1 या 2 दिन बाद) छिड़काव कर देना चाहिए। इसके बाद जब फसल 25-30 दिन की हो जाए तो एक गुड़ाई खुरपी, कस्सी या किसी अन्य उपयुक्त यंत्र द्वारा कर देनी चाहिए। इमाजेथापायर 600 ग्रा./हैक्टेयर या क्विज़ालोफॉप इथाइल की 400 ग्रा./हैक्टेयर मात्रा का बुवाई के 20-25 दिन पश्चात 500 लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जा सकता है।

कीट प्रबंधन

1. *माहू एवं जैसिड्स:* माहू कीट के वयस्क सामान्यत: चमकदार, काले, नाशपाती के आकार के 2 मि.मी. लम्बे होते हैं। सामान्यतः इसके युवा पत्तियों की निचली सतह, तने पर, परिपक्व पौधों के ऊतकों और फलियों पर बड़ी संख्या में मौजूद होने के कारण फसल की वृद्धि को क्षति पहुंचाते हैं। माहू एवं जैसिड्स के शिशु (अवयस्क) एवं वयस्क दोनों रस चूसकर फसल को हानि पहुंचाते हैं। इनके प्रभाव से पौधे बौने और पत्तियां विकृत हो जाती हैं। प्रभावित भागों में क्लोरोसिस (हरिमाहीनता) दिखाई देती है, पत्ते मुड़ जाते हैं, तथा अंततः सूख जाते हैं, और समय से पहले पत्तियां गिर जाती हैं। माहू लोबिया में मोज़ेक वायरस के संचरण (वाहन) का कारण भी है।

   उपरोक्त दोनों कीटों के प्रकोप को कम करने के लिए इनकी प्रतिरोधी किस्मों को उगाया जाना चाहिए। इन कीटों की रोकथाम के लिए डाईमैथोएट (30 ई.सी.) 1.7 मि.लि. अथवा ओक्सिड़ेमेटान मिथाइल (25 ई.सी.) 1.0 मि.लि प्रति लिटर पानी का 500 लिटर घोल प्रति हैक्टेयर फसल पर छिडक देना चाहिए।

2. *चित्तीदार फली छेदक:* यह लोबिया की फसल को बहुत हानि पहुंचाता है। यह फूल के पास अंडे देता है। इसकी युवा सूंडियां कली, फूल तथा फली के भीतर प्रवेश कर जाती हैं। ये सूंडियां फली के बीजों को खाती हैं। तथा प्रवेश द्वार का छेद मल-मूत्र से बंद कर देती हैं। कभी-कभी सूंडियां तने में मलबे के भीतर या सतह के निकट प्यूपा बनाती हैं। इसका वयस्क अग्रपंखों पर सफेद धारियों वाला छोटा कीट होता है। यदि इस कीट से फसल को अधिक हानि की संभावना हो तो तुरंत उचित कीटनाशी का प्रयोग करें। इसके लिए क्लोरपायरीफॉस (50% ई.सी.) + साइपरमेथ्रिन (5% ई.सी.) की 2 मि.लि. मात्रा प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जा सकता है। प्रकोप कम न होने पर 10 दिनों के अंतराल पर पुनः छिड़काव करना चाहिए।

3. *सैनिक कीट:* इसका लार्वा (सूंडियां) बारीकी से समूहीकृत गोलाकार या अनियमित आकार के छेद पत्तों में बनाते हैं। पत्तियों को अधिक खा जाने के कारण इसके लार्वा पत्तियों की एक जालनुमा आकृति बना देते हैं। इसके अंडों के समूह बन जाते हैं तथा पत्तियों पर मौजूद अंडों के ये गुच्छे सफ़ेद स्केल में ढके होते हैं । इसके युवा लार्वा हल्के हरे से पीले रंग के होते हैं, जबकि पुराने लार्वा आमतौर पर गहरे हरे रंग के होते हैं तथा शरीर के किनारे-किनारे एक गहरी और हल्की रेखा रहती है और नीचे का भाग गुलाबी या पीला होता है। इस कीट के पतंगे मध्यम आकार के होते हैं, तथा पंखों का फैलाव 25 से 30 मि.मी. होता है।

   इसको नियंत्रित करने के लिए 5% नीम बीज कर्नेल इमल्शन (एनएसकेई) और एज़ाडिरेक्टिन 1500 पीपीएम की 5 मि.लि. मात्रा का प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जा सकता है । आखिरी जुताई के समय नीम की खली 250 कि.ग्रा./हैक्टेयर की दर से डालें। सायनट्रानिलिप्रोल 19.8% + थियामेथोक्साम 19.8% एफएस @ 4 मि.लि./कि.ग्रा. बीज से उपचारित करें। *मेटारिज़ियम एनिसोप्लिया* (टीएनएयू-एमए-जीडीयू आइसोलेट) 2.5 कि.ग्रा./हैक्टेयर या इमामेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी 200 ग्रा./हैक्टेयर या नोवेल्यूरॉन 10 ईसी 750 मि.लि./हैक्टेयर या स्पाइनेटोरम 11.7 एससी 250 मि.लि./हैक्टेयर मात्रा को 400 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

4. *फली बग:* लोबिया का फली बग एक हानिकारक कीट होता है। इसके निम्फ (शिशु) प्रमुख पार्श्व रीढ़ के साथ लाल रंग के होते हैं। तथा अंडे फलियों, पत्तियों या फूलों पर देते हैं। इसके वयस्क एनोप्लोकनेमिस गोल कंधों के साथ भूरे या काले रंग का होता है जबकि क्लैविग्रैला भूरे रंग का होता है। इसके वयस्क विकासशील बीजों का रस चूसते हैं जिससे बीज सिकुड़ जाते हैं और अपनी अंकुरण क्षमता खो देते हैं। इस कीट को नियंत्रित करने के लिए मेलाथियान की 4 मि.लि. मात्रा को प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त डाइमेथोएट 30% ईसी की 500 मि.लि. मात्रा को 500 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

रोग प्रबंधन

1. *जड़ सड़न या डैम्पिंग-ऑफ रोग:* इस रोग के प्रकोप के कारण पोधों की मुख्य जड़ों का रंग बदल जाता है तथा तनों में अनुदैर्ध्य दरारें आ जाती हैं। उपरोक्त के परिणामस्वरुप पौधों में बौनापन आ जाता है तथा वे



जड़ सड़न रोग

मुरझा जाते हैं और पैदावार में भारी कमी आ सकती है। बोया गया बीज मिट्टी से निकलने से पहले ही सड़ जाता है तथा युवा अंकुर भी मर जाते हैं। मिट्टी में बड़ी मात्रा में असंघटित पौधों के अवशेष होते हैं। यह रोग ठंडी तथा गीली मिट्टी में अधिक होता है। इस रोग की रोकथाम के लिए बीज की बुवाई के समय मृदा में अधिक नमी नहीं होनी चाहिए। *ट्राईकोडेर्मा विरिडी* की 2.5 किग्रा मात्रा को 50 किग्रा गोबर की खाद में मिलाकर प्रति हैक्टेयर की दर से डालने पर इसको नियंत्रित किया जा सकता है ।

2. *फ्यूजेरियम विल्ट (उकठा):* फ्यूजेरियम विल्ट के कारण आमतौर पर पौधों की एक तरफ की निचली पत्तियां पीली हो जाती हैं। संक्रमित पौधे आमतौर पर बौने रह जाते हैं और प्रायः मुरझा जाते हैं। जब पौधे को लंबाई में विभाजित (चीरा) किया जाता है तो तने में ईंट जैसा लाल ऊतक देखा जा सकता है। इस रोग को नियंत्रित करने के लिए प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें तथा जड़-गांठ सूत्रकृमि को नियंत्रित करें क्योंकि सूत्रकृमि पौधों में फ्यूजेरियम विल्ट के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ाते हैं। बीज की उपयुक्त कवकनाशी से उपचारित करने के बाद ही बुवाई करें तथा उचित फसल चक्रों को भी अपनाया जाना चाहिए।

3. *साउथ ब्लाइट:* यह रोग लोबिया की जड़ों और तनों को प्रभावित करता है। इस रोग के लक्षण निचली पत्तियों से शुरू होते हैं जिससे ये पत्तियां पीली होने के बाद मुरझा जाती हैं तथा कुछ ही दिनों में पौधा मर जाता है। तने के अंदर एक भूरा संवहनी मलिनकिरण मिट्टी की रेखा से कई इंच ऊपर तक फैल जाता है। गर्म और नम परिस्थितियों मे कवक तने पर विकसित होकर विशिष्ट पंखे के आकार के पैटर्न बनाते हैं। कवक के इन सफ़ेद-चटाई में असंख्य चिकने, गोल, हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग के सरसों के बीज जैसे शरीर बन जाते हैं। इस रोग के प्रकोप से बचने के लिए खेत को साफ़ रखें तथा गैर-फलियों वाली फसलों के साथ उचित फसल चक्र अपनाएं। भूमि की तैयारी के समय गहरी जुताई करें। इस रोग के नियंत्रण के लिए कार्बेन्डाजिम की 1 ग्रा. प्रति लिटर पानी की दर से स्पॉट ड्रेंचिंग करें।

4. *पीला मोज़ेक रोग:* यह लोबिया का सबसे आम वायरस (विषाणु) रोग है जो फसल में माहू द्वारा फैलता है। पत्तियों पर गहरे हरे मोज़ेक पैटर्न बनते हैं। कुछ दशाओं में पत्तियां मोटी और विकृत हो जाती हैं। मोज़ेक पैटर्न युवा पत्तियों पर सबसे अधिक देखा जाता है। इसके अधिक प्रकोप के कारण पौधे बौने हो सकते हैं और उनमें फली बनने की उम्मीद लगभग समाप्त हो जाती है। इस रोग को नियंत्रित करने के लिए रोग



पीला मोज़ेक रोग



प्रतिरोधी किस्मों को उगाया जाना चाहिए। साथ ही गैर-फलियों (जैसे अनाज) वाली फसलों के साथ उचित फसल चक्रों को अपनाना आवश्यक होता है। बुवाई के लिए स्वस्थ एवम रोग-मुक्त बीजों का उपयोग करना चाहिए। रोग से ग्रसित पौधो को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। रोगवाहक माहू को नियंत्रित करने के लिए लिए डाईमेथोएट 30 ई.सी. की 1.7 मि.लि. प्रति लिटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

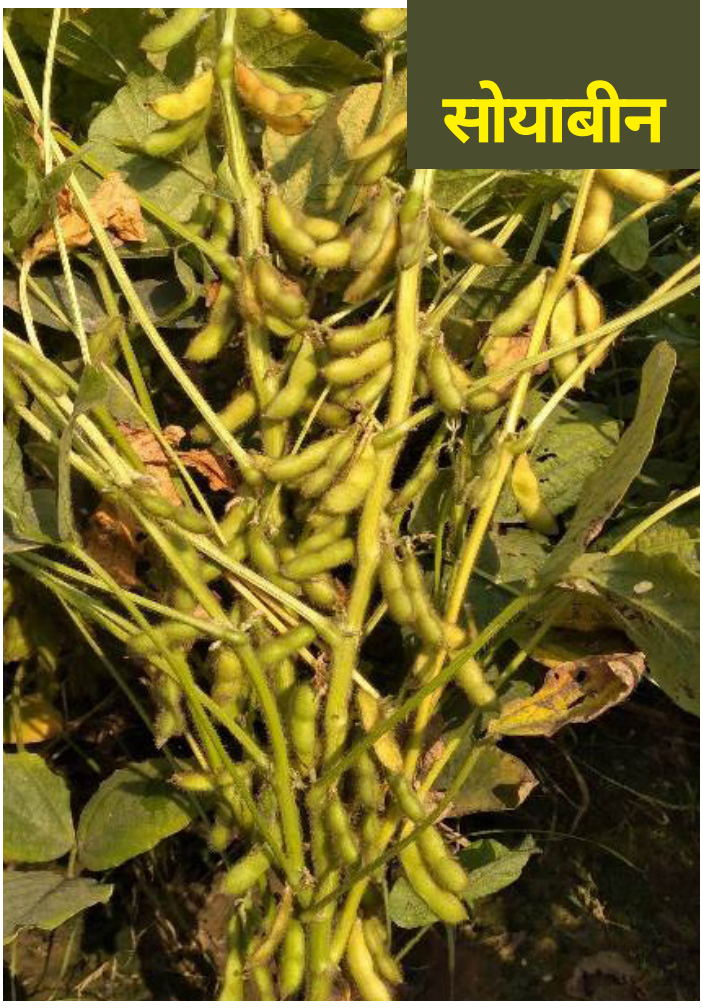
कटाई एवं गहाई

कटाई का समय फसल उगाने के उद्देश्य पर निर्भर करता है। यदि फसल सब्जी (हरी फलियों) के लिए उगाई गई है तो हरी फलियों की तुड़ाई लगभग फसल बुवाई के 50 दिन पश्चात प्रारम्भ हो जाती है तथा फली की उचित अवस्था पर तुड़ाई करते रहना चाहिए। हरे चारे के लिए उगाई गई फसल की कटाई 45-60 दिनों के मध्य की जा सकती है। दाने के लिए उगाई गई फसल की पकने की अवधि किस्मों पर निर्भर करती है जब फलियां पूर्ण रूप से पक जाएं तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए।

फसल की कटाई के पश्चात अच्छी प्रकार से सुखा लेना चाहिए तथा दाने को थ्रेशर द्वारा या मानव द्वारा पौधों से अलग कर लेना चाहिए। इसके बाद दानों की सफाई करके उन्हें उचित नमी बनाने के लिए सुखा लेना चाहिए। यदि फसल बीज हेतु उगाई गई है तो फसल के स्वस्थ पौधों की कटाई अच्छी प्रकार से फसल पकने पर करनी चाहिए। खलिहान में फसल को अलग सुखाकर गहाई करके बीज को फलियों से अलग कर लिया जाता है तथा स्वस्थ बीजों को अच्छी प्रकार सुखाना चाहिए। बीजों में नमी 8 – 9 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। बीज को उपचारित करके उचित स्थान पर भंडारित कर लिया जाता है।

उपज

उन्नत विधियों से लोबिया की खेती करने पर सब्जी के लिए फलियों की औसत उपज 6 से 7 टन, हरे चारे की 15 से 18 टन तथा दाने की उपज 1.5 से 2.0 टन प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।



सोयाबीन

यह दलहन कुल (लेग्यूमिनोसी) की एक महत्वपूर्ण फसल है जिसे मुख्यतः तिलहन के रूप में प्रयोग में उगाया जाता है। सोयाबीन को शाकाहारी मनुष्यों का मांस भी कहा जाता है क्योंकि इसमें प्रोटीन की बहुत अधिक मात्रा होती है। स्वास्थ्य के लिए यह एक बहुउपयोगी खाद्य पदार्थ है। इसके मुख्य घटक प्रोटीन, कार्बोहाइडेंट और वसा होते हैं। भारत के सोयबीन उत्पादक मुख्य राज्य हैं - मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक और गुजरात. आदि।

जलवायु

सोयाबीन की अच्छी वृद्धि एवं उपज के लिए गर्म एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है। सोयाबीन के बीजों के अंकुरित होने के लिए लगभग 25^0 से. तथा फसल की बढोत्तरी के लिए लगभग $25\text{-}30^0$ से. तापमान की आवश्यकता होती है। सोयाबीन की अच्छी फसल के लिए वार्षिक वर्षा 60-70 से.मी. होनी चाहिए।

फसल प्रणाली

सोयाबीन की खेती मुख्य रूप से इन फसल चक्रों में की जाती है: सोयाबीन-गेहूं, सोयाबीन-चना, सोयाबीन-आलू, सोयाबीन-सरसों, सोयाबीन-अलसी, सोयाबीन-कुसुम, आदि। इन फसल चक्रों के अलावा सोयाबीन की खेती एक अंतर्फस्ली के रूप में भी की जाती है: अरहर + सोयाबीन, ज्वार + सोयाबीन, मूंगफली + सोयाबीन, मक्का + सोयाबीन, बाजरा + सोयाबीन, कपास + सोयाबीन, आदि।

मृदा

सोयाबीन की खेती अधिक हल्की अथवा रेतीली भूमि को छोड़कर लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में सफलतापूर्वक की जा सकती है, परंतु पानी के निकास वाली चिकनी दोमट भूमि सोयाबीन के लिए अधिक उपयुक्त होती है। जहां भी खेत में पानी रुकता हो वहां सोयाबीन का उत्पादन न लिया जाए।



उन्नत किस्में

विभिन्न क्षेत्रों के लिए सोयाबीन की प्रमुख किस्में सारणी 1 में दी गई हैं।

सारणी 1. सोयाबीन की उन्नतशील किस्में

क्र. सं.	क्षेत्र के लिए	किस्म
1.	उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र	शिलाजीत, पूसा 16, वीएल सोया 2, वीएल सोया 47, हरा सोया, पालम सोया, पंजाब 1, पीएस 241, पीएस 1092, पीएस 1347, वीएलएस 59, वीएलएस 63
2.	उत्तरी मैदानी क्षेत्र	पंत सोयाबीन-19 (पीएस 1368), एमएसीएस-1188, प्रताप सोया 45 (आरकेएस 45), आरवीएस 2001-4, जेएस 20-29, जेएस 20-34, पूजा (एमएयूएस 2), एमएयूएस 162, डीएसबी-21, एनआरसी 86, केडीएस 344 (फुले अग्रणी), पूसा 12 (डीएस 12-13), एसएल 958, जेएस 20-69, वीएल भट्ट 201, वीएल सोया 77, पीएस 1480, पीएस 1477 (पंत सोयाबीन 24), पीएस 1521 (पंत सोयाबीन 23), केएस 103, एमएयूएस 612, आरकेएस 113, डीएसबी 23, राज सोया-24 (आरवीएस 2002-4), छत्तीसगढ़ सोयाबीन 1, जेएस 20-98, डीएसबी 21, एसएल 979, एसएल 955, बसारा (एएसबी 22), एनआरसी 127 जेएस 20-94
3.	मध्य भारत क्षेत्र	जेएस 93-05, जेएस 95-60, जेएस 335, एनआरसी 7, एनआरसी 37, जेएस 80-21, समृद्धि, एमएयूएस 81
4.	दक्षिणी क्षेत्र	को 1, को 2, एमएसीएस 24, पूजा, पीएस 1029, केएचएसबी 2, एलएसबी 1, प्रतिकार, फूले कल्याणी, प्रसाद
5.	उत्तर पूर्वी क्षेत्र	बिरसा सोयाबीन 1, इंदिरा सोया 9, प्रताप सोया 9, एमएयूएस 71, जेएस 80-21

खेत की तैयारी

खेत की तैयारी के लिए रबी फसल की कटाई के बाद मई के महीने में तीन वर्षों में एक बार गहरी जुताई एवं प्रत्येक वर्ष सामान्य जुताई करके खेत को खुला छोड़ देना चाहिए ताकि उसमें रहने वाले हानिकारक कीट, बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्म जीवों एवं खरपतवारों का नाश हो सके। बुवाई से पहले खेत को दो बार कल्टीवेटर या हैरो चलाकर पाटा लगा देना चाहिए ताकि खेत समतल हो जाए।

बीज एवं बुवाई

सोयाबीन की खेती मुख्य रुप से खरीफ में होती है। रबी और जायद में भी कुछ क्षेत्रों में इसकी फसल ली जा सकती है। खरीफकालीन सोयाबीन की बुवाई जून-जुलाई में की जाती है। विभिन्न क्षेत्रों में बुवाई का समय निम्नवत है:

उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र: जून

उतरी मैदानी क्षेत्र: मध्य जून - मध्य जुलाई

मध्य क्षेत्र: मध्य जून - मध्य जुलाई

दक्षिणी क्षेत्र: मध्य जून - जुलाई अंत

उत्तर-पूर्वी क्षेत्र: मध्य जून - मध्य जुलाई

रबी (मध्य भारत के कुछ क्षेत्र): नवंबर

दक्षिण भारत (जायद): फरवरी-मार्च

सोयाबीन की सफल खेती के लिए बीज की मात्रा उपयुक्त होनी चाहिए। यदि बीज के जमने की क्षमता कम है तो बीज की मात्रा उसी हिसाब से बढा देनी चाहिए। बीज का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज ज्यादा पुराना न हो क्योंकि एक साल के बाद इसकी अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। छोटा दाना: 60 से 65 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर, मध्यम दाना: 70 से 75 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर, मोटा दाना: 80 से 85 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर उपयुक्त बीज दर है।

सोयाबीन की बुवाई देसी हल, सीडड्रिल अथवा किसी अन्य उपयुक्त यंत्र से कतारों में करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी उत्तर भारत के क्षेत्रों में 45-60 सें.मी. और अन्य क्षेत्रों में 30-45 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 5 सें.मी. होनी चाहिए। बुवाई 3-4 सें.मी. गहराई पर करनी चाहिए। अधिक गहराई से अंकुरित बीज को ऊपर आने में अधिक समय लगता है और पौधों की वृद्धि पर बुरा असर पड़ता है।

बुवाई से पहले बीज को 2 ग्राम थिरम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से भली प्रकार उपचारित कर लेना चाहिए। इसके बाद राईजोबियम एवं पीएसबी जीवाणु टीके से बीज को उपचारित करें। जीवाणु टीके को ठंडे गुड़ के घोल में मिलाकर बीज को उपचारित करें। इसके बाद बीज को छाया में सुखाकर बुवाई कर दें। सामान्यतः बीज को जीवाणु टीके की 5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।





पोषक तत्व प्रबंधन

फसल से अच्छा उत्पादन लेने के लिए लगभग 8-10 टन प्रति हैक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुवाई से लगभग 25-30 दिन पहले खेत में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा को मिट्टी की जांच के आधार पर प्रयुक्त करना चाहिए। मृदा जांच की अनुपस्थिति में सोयाबीन के लिए पोषक तत्वों की सामान्य संस्तुति इस प्रकार है: 20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60-80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$), 40-50 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) तथा 20-25 गंधक प्रति हैक्टेयर। अगर फॉस्फोरस सुपर फॉस्फेट से दिया गया हो तो अलग से गंधक देने की आवश्यकता नहीं होती है। यदि सुपर फॉस्फेट का उपयोग नहीं किया गया है तो गोबर की खाद डालने के समय 150-200 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर के हिसाब से जिप्सम भी मिलाएं जो गंधक की आपूर्ति करने में सक्षम होता है।

जल प्रबंधन

सोयाबीन में सिचांई की आवश्यकता मिट्टी के प्रकार, तापमान और वर्षा के ऊपर निर्भर करती है। अगर लंबे समय तक वर्षा न हो तो सिंचाई करनी चाहिए। सोयाबीन में सिंचाई के लिए तीन क्रांतिक अवस्थाएं होती हैं - पौध

अवस्था, फूल आना एवं दाना भरना। अतः इन अवस्थाओं पर सुनिश्चित करना चाहिए कि मृदा में पानी की कमी न रहे। खेत में पानी के भराव से सोयाबीन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः जल भराव की स्थिति में जल निकास को सुनिश्चित करना आवश्यक होता है।

कीट प्रबंधन

बीटल (भृंग), तना मक्खी व अन्य कीट मिट्टी में निवास करते हैं। इन कीटों के नियंत्रण के लिए फोरेट (10 जी) @10 कि.ग्रा./है. की दर से बुवाई के समय उर्वरक के साथ मिट्टी में मिलाएं। जिन स्थानों पर तना मक्खी से फसल की प्रारंभिक अवस्था में नुकसान होता है, वहां 7-10 दिन की फसल पर थायोमेथाक्सम 25 डब्लू जी @ 100 ग्रा./है. की दर से छिड़काव करें। ब्लू बीटल के नियंत्रण हेतु क्विनालफॉस 25 ई सी @ 1.5 लि./है. का छिड़काव करें। तंबाकू की इल्ली (सूंडी) एवं रोयेंदार इल्ली छोटी अवस्था में झुंड में रहकर एक ही पौधे की पत्तियों को खाती हैं। इस प्रकार के पौधों को नष्ट कर देने से इनके प्रकोप से बचा जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर रासायनिक कीटनाशक जैसे - क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई सी (1.5 लि./है.) या क्विनालफॉस 25 ई सी (1.5 लि./है.) या मिथोमिल 40 एस पी (1.0 कि.ग्रा./है.) का प्रयोग करें। उपरोक्त रसायनों का लगभग 500 लिटर घोल 1 हैक्टेयर फसल के लिए पर्याप्त होता है।

चक्र भृंग द्वारा ग्रसित भाग अथवा पौधों को चक्र के नीचे से नष्ट कर देने पर रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है। यदि यह संभव न हो तो ट्राइएझोफॉस 40 ई सी (0.8 लि./है.) या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस एल (0.8 लि./है.) या इथोफेनप्रोक्स 10 ई सी (1.0 लि./है.) का छिड़काव करें। छिड़काव करने के लिए प्रति हैक्टेयर 500 लिटर घोल का प्रयोग करें। यदि पावर स्प्रेयर का प्रयोग किया जा रहा है तब 150 लि. घोल प्रति हैक्टेयर का प्रयोग करें। पत्ती खाने वाली इल्लियों के नियंत्रण हेतु सूक्ष्मजीव आधारित जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करें। जीवाणु आधारित - बायोबिट, डायपेल, बायोआस्प, डेल्फिन, हाल्ट, अथवा फफूंद आधारित - बायोरिन, डिस्पेल को 1 कि.ग्रा. या 1 लिटर प्रति हैक्टेयर की दर से अथवा वायरस आधारित कीटनाशक को 250 एल ई की दर से फूल आने अथवा इल्लियों का प्रकोप शुरू होने की अवस्था पर छिड़काव करें।

पत्ती खाने वाली इल्लियों के रासायनिक नियंत्रण हेतु वही कीटनाशकों का प्रयोग करें जो तंबाकू की इल्ली के नियंत्रण हेतु अनुशंसित किए गए हैं। कीटों के आक्रमण की तीव्रता निर्धारित करने के लिए यह अतिआवश्यक है कि फसल की सतत निगरानी की जाए।

रोग प्रबंधन

ऊपरी तथा निचली पत्तियों पर होने वाले रोग जैसे माइरोथेसियम व सरकोस्पोरा पर्ण धब्बा रोग एवं राइजोक्टोनिया एरियल ब्लाइट की रोकथाम के लिए कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू पी या थायोफेनॅटमिथाइल 70 डब्ल्यू पी @ 0.5 कि.ग्रा. को 500-600 लिटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के 35 व 50 दिन बाद दो छिड़काव करें। जीवाणुजनित फफोला रोग होने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2 कि.ग्रा. एवं स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 200 ग्राम प्रति 500-600 लिटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

पीला मोजेक विषाणु के फैलाव को रोकने के लिए रोग वाहक कीट सफ़ेद मक्खी का नियंत्रण आवश्यक होता है। इसके लिए थायोमिथाक्साम 25 डब्ल्यू जी @ 200 ग्राम का 500-600 लिटर पानी में घोल बनाकर या मिथाइल

डिमेटोन @ 0.8 लि. प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। रोली (गेरूई) रोग नियंत्रण के लिए हेक्साकोनाजोल या प्रोपिकोनाजोल के 0.1 प्रतिशत की दर से दो या तीन बार छिड़काव करें। प्रथम छिड़काव रोग दिखाई देते ही दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद करें। अधिक रोली प्रभावित क्षेत्रों में उपरोक्त में से कोई एक कवकनाशी का बुवाई के 35 से 40 दिन बाद बचाव हेतु एक छिड़काव करें।



पीला मोजेक विषाणु से प्रभावित सोयाबीन



रोली (गेरूई) रोग से प्रभावित सोयाबीन

कटाई एवं गहाई

जब सोयाबीन की पत्तियों का रंग पीला एवं फलियों का रंग पीला या भूरा हो जाए तो फसल को काट लेना चाहिए। कटाई के बाद चार-पांच दिन तक खेत में ही सूखने देना चाहिए ताकि दानों में नमी की मात्रा कम होकर 13-14 प्रतिशत हो जाए। फिर इसके बाद इसकी गहाई कर लेनी चाहिये। गहाई के लिए आजकल थ्रेशरों की मदद ली जा रही है। यह ध्यान रखना चाहिए कि थ्रेशर की गति 300-400 आर पी एम ही रखी जाए। अधिक गति पर बीजों को नुकसान हो सकता है।

उपज

अगर सही किस्म चुनकर उपयुक्त सस्य विधियों को अपनाया जाए तो 2000-2500 कि.ग्रा./ हैक्टेयर उपज की प्राप्ति हो सकती है।

मूंगफली



मूंगफली को अर्थनट, मंकी नट, पीनट और मनीला नट के नाम से भी जाना जाता है। मूंगफली की खेती इसकी गिरी के लिए की जाती है जिसमे तेल (~45%) और प्रोटीन (~20%) प्रचुर मात्रा में पाया जाता हैं। मूंगफली थायमिन, राइबोफ्लेविन, निकोटिनिक एसिड और विटामिन ई का भी एक मुख्य स्रोत है। इसका उपयोग मुख्य रूप से वानस्पतिक तेल के लिए किया जाता है। फसल चक्र में मूंगफली को शामिल करने से इसकी जड़ों की गांठों के माध्यम से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करके मृदा की उर्वरता को बढाती है। यह फसल मिट्टी के कटाव को कम करने और जल संरक्षण के लिए एक संरक्षित फसल के रूप में कार्य करती है।

भारत में मूंगफली उत्पादन पर आईसीएआर से किए गए अनुसंधान कार्य से पता चला है कि मूंगफली की उत्पादकता या उपज क्षमता लगभग 5.7 टन/हैक्टेयर है। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि उन्नत किस्मों ने उत्पादकता वृद्धि में 25-28% तक का योगदान दिया, जबकि उन्नत सस्य क्रियाओं ने उत्पादकता में 30-32% की वृद्धि में योगदान दिया।

जलवायु

मूंगफली की खेती दुनिया के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के बीच फैली हुई है। अर्ध-उष्ण जलवायु मूंगफली के लिए अधिक उपयुक्त होती है। सूर्य की अधिक रोशनी तथा उच्च तापमान इसकी बढ़वार तथा उपज के लिए अनुकूल हैं। फसल की अच्छी उपज के लिए 25-30^{0} से. तापमान और 500 से 1000 मि.मी. वार्षिक वर्षा उत्तम रहती है। मूंगफली दिवस-निरपेक्ष फसल है जिसके कारण इसकी खेती वर्ष भर की जा सकती है।



फसल चक्र एवं प्रणाली

उत्तरी भारत में मूंगफली के बाद मुख्यतः गेहूं और दालों की खेती की जाती है, जबकि देश के दक्षिणी राज्यों में ज्वार और सूरजमुखी, फसल चक्र की प्रमुख फसलें हैं। धान-मूंगफली-मूंग, धान-मूंगफली-धान एवं धान-मूंगफली-बाजरा फसल चक्रों के तहत भी क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी हो रही है जिससे किसानों को अधिक उत्पादकता तथा आय प्राप्त हो रही है। मध्य भारत में मूंगफली-कपास, मूंगफली-ज्वार और मूंगफली-अरहर फसल चक्र प्रचलित हैं। आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के तटीय भागों में धान-मूंगफली फसल चक्र के तहत क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी हो रही है।

जायद में मूंगफली और सूरजमुखी की 4:2 या 3:1 पंक्तियों के अनुपात में खेती करके 25-30 प्रतिशत अधिक उपज ले सकते हैं। इसी तरह, खरीफ में मूंगफली और अरहर का अंतरफसलीय 3:1 पंक्तियों के अनुपात में सफल और अधिक उपजाऊ पाया गया है। बारानी क्षेत्रों में मूंगफली+अरहर (6:1), मूंगफली+बाजरा (6:1), मूंगफली+ज्वार (4:1 या 6:2), मूंगफली+कपास (3:1 या 5:1), मूंगफली+अरंडी (5:1) तथा मूंगफली+तिल (4:1) की अंतर्फस्लीय खेती को अधिक लाभकारी पाया गया है।

मृदा

मूंगफली को हल्की से लेकर भारी मृदाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, लेकिन बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास अच्छा हो और प्रचुर मात्रा में कैल्सियम और जीवांश मौजूद हो, मूंगफली के लिए सबसे उपयुक्त रहती है। मूंगफली के लिए हल्की अम्लीय भूमि जिसका पी एच मान 6.0 से 6.5 के बीच हो, उपयुक्त होती हैं। जिन भूमियों में ऊसर और लवण की समस्या हो या अधिक अम्लीय हो, मूंगफली को बढ़ावा नहीं देना चाहिए।

उन्नत किस्में

उपज बढ़ाने में किस्मों का विशिष्ट योगदान होता है। उन्नत किस्मों को अपनाने से स्थानीय किस्मों की तुलना में मूंगफली की उपज में 15-20 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। स्थान विशेष के लिए सुझाई गई किस्मों का विवरण सारणी 1 में दिया गया है।

सारणी 1. विभिन्न राज्यों के लिए संस्तुत मूंगफली की उन्नत किस्में

आंध्र प्रदेश और तेलंगाना	रोहिणी, आरएआरएस-टी-1, आरएआरएस-टी-2, धरनी (टीसीजीएस-1043), फुले वार्ना (केडीजी-128), फुले मोर्ना (केडीजी-123), एएलजी-06-320, के-अमरावती, गुजरात जूनागढ़ मूंगफली-32 (जीजेजी-32) (आईसीजीवी 03043), गुजरात जूनागढ़ मूंगफली-33 (जीजेजी-33), धीरज (टीसीजीएस 1073), फुले धानी (जेएल 1085), फुले चैतन्य (केडीजी-160), प्रगति (टीसीजीएस-894), डिएच 256, गिरनार 4 (आईसीजीवी 15083), गिरनार 5 (आईसीजीवी 15090), के 1719 (कादिरी चित्रवती), आदि।

तमिलनाडु	वीआरआई 1, वीआरआई 2, वीआरआई 3, आईसीजीएस 44, जेएल 24, टीएमबी 2, टीएम 7, टीएम 12, वीआरआई 4, वीआरआई 5, डीएसआर 1, आईसी जवी 86590, अजेय (आर. 2001-3), आईसीजीवी 00348, वीआरआई (जीएन) 7, वीआरआई (जीएन) 6 (वीजी 9816), जेएसपी 39, आईसीजीवी 00350, फुले वार्ना (केडीजी-128), फुले मोर्ना (केडीजी-123), एएलजी-06-320, वीआरआई-8 (वीजी-09220), गुजरात जूनागढ़ मूंगफली-32 (जीजेजी-32) (आईसीजीवी 03043), गुजरात जूनागढ़ मूंगफली-33 (जीजेजी-33), बीएसआर 2 (बीएसजी 0912) (आईएनएस 2013-8), फुले चैतन्य (केडीजी-160), टीएमवी-14, प्रगति (टीसीजीएस-894), डिएच 256, गिरनार 4 (आईसीजीवी 15083), गिरनार 5 (आईसीजीवी 15090), के 1719 (कादिरी चित्रवती), आदि।
गुजरात	जीजी 3, जीजी 6, जीजी 12, वीआरआई 2, जीजी 11, जीजी 20, आईसीजीएस 44, गिरनार 1, जे 11, जीएयूजी 1, आईसीसीएस 37, सोमनाथ, कौशल, जेएल 501, जीजेजी-एचपीएस-1 (जेएसपी-एचपीएस-44), जीजेजी-31 (जे-71), जीजेजी-9 (जे 69), जीजेजी-22 (जेएसएसपी 36), जीजेजी-17 (जेएसपी-48), फुले वार्ना (केडीजी-128), फुले मोर्ना (केडीजी-123), गुजरात जूनागढ़ मूंगफली-34 (जीजेजी-34), गुजरात मूंगफली एचपीएस 2 (जीजीएचपीएस 2), गिरनार 4 (आईसीजीवी 15083), गिरनार 5 (आईसीजीवी 15090), गुजरात मूंगफली 41, आदि।
कर्नाटक	एम 206, आईसीजीएस 11, केआरजी 1, गिरनार 1, टीएमवी 2, कौशल, अजेय (आर.2001-3), आईसीजीवी 00348, वीआरआई (जीएन) 6 (वीजी 9816), टीजीएलपीएस 3 (टीडीजी-39), जेएसपी 39, कादिरी हरितनहरा (के 1319), फुले वार्ना (केडीजी-128), केसीजी-6 (सीटीएमजी 6), जीकेवीके-5, फुले मोर्ना (केडीजी-123), गुजरात जूनागढ़ मूंगफली-32 (जीजेजी-32), फुले धानी (जेएल 1085), डीएच-232, डीएच-245, आईसीजीवी 06189, गिरनार 4 (आईसीजीवी 15083), गिरनार 5 (आईसीजीवी 15090), डीएच 257, के 1812 (कादिरी लेपाक्षी), आदि।
महाराष्ट्र	टीएजी 24, टीएजी 26, आईसीजीएस 11, गिरनार 1, करद 4-11, आईसीजीएस 37, कोनकन, गौरव, जेएल 24, कादिरी 4, प्रगति जेएल 220, एलजीएन 2, अजेय (आर-2001-3), आईसीजीवी 00348, वीआरआई (जीएन) 6 (वीजी 9816), जेएसपी 39, कादिरी हरितनहरा (के 1319), फुले व्यास (जेएल-220), आरएचआरजी-6021, फुले भारती (जेएल-776), फुले वार्ना (केडीजी-128), फुले मोर्ना (केडीजी-123), गुजरात जूनागढ़ मूंगफली-32 (जीजेजी-32) (आईसीजीवी 03043), फुले उन्नति (आरएचआरएस-6083), कोंकण भूरत्न (आरटीएनजी-29), पीडीकेवीजी 335 (एके-335), डीएच 257, आदि।
मध्य प्रदेश	ज्योति, गंगापुरी, जवाहर, आईसीजीएस 11, कौशल, जवाहर मूंगफली 23 (जेजीएन 23), एएलजी-06-320, फुले भारती (जेएल-776), आदि।



राजस्थान	मुक्ता, प्रकाश, चित्रा, बीएयू 13, आरजी 141, आरजी 144, टीजी-39, गिरनार 2 (पीबीएस-24030), उत्कर्ष (सीएसएमजी 9510), जीजी 21 (जेएसएसपी 15), जेएल 501, एचएनजी 69, प्रताप राज मूंगफली, आरजी-510, आरजी 425, एचएनजी-123, मूंगफली राज मूंग-3 (आरजी-559-3), फुले वार्ना (केडीजी-128), फुले मोर्ना (केडीजी-123), प्रताप मूंगफली 3 (यूजी 116), आदि।
उत्तरी राज्य	पंजाब मूंगफली नं.1, एसजी 44, एसजी 84, आईसीजीएस 37, आईसीजीएस 1, मुक्ता, प्रकाश, चित्रा, वीएयू 13, एचएनजी 10, एमएच 4, एम 335, डीआरजी 17, सीएसएमजी 84-1 (अम्बर), एमए 16, एम 522, गिरनार 2 (पीबीएस-24030), उत्कर्ष: (सीएसएमजी 9510), जीजी 21 (जेएसएसपी 15), एचएनजी 69, आरजी-510, एचएनजी-123, मूंगफली राज मूंग-3 (आरजी-559-3), जे 87 (गुजरात मूंगफली 36) आदि।

खेत की तैयारी

खेत की जुताई की संख्या, मृदा की किस्म, फसल चक्र, मृदा में नमी की मात्रा तथा प्रयोग में आने वाले यंत्र आदि पर निर्भर करती है। प्रायः पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद 3-4 जुताइयां कल्टीवेटर या देसी हल से करके मिट्टी को भुरभुरा बना लेना चाहिए। खेत में नमी को संचित रखने के लिए हर जुताई के बाद पाटा लगाना जरूरी है।

बीज एवं बुवाई

मूंगफली की गुच्छेदार किस्मों में बीज की उचित मात्रा 100 से 125 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है, जबकि मध्यम और अधिक फैलने वाली किस्मों में क्रमशः 80 से 100 और 60 से 80 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर प्रयोग करें। बुवाई से पूर्व बीज को 2 या 3 ग्राम थिरम या कार्बेन्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से मिलाकर उपचार करें। इस उपचार के 5-6 घंटे बाद, बीज को एक विशिष्ट प्रकार के उपयुक्त राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। उपचार हेतु एक टिन के चौड़े बर्तन में 1/2 लिटर पानी लें व उसमें 50 ग्राम गुड़ मिलाकर हल्का सा उबालें और एकदम ठंडा कर लें। फिर इस घोल में 200-250 ग्राम राइजोबियम कल्चर मिलाएं। इस तैयार घोल के मिश्रण को 10 कि.ग्रा. बीज के ऊपर समान रूप से छिड़क कर हल्के हाथ से मिलाएं जिससे बीज के ऊपर हल्की परत बन जाए। उपचार के बाद बीज को छाया में सुखायें एवं शीघ्र ही बुवाई के लिए उपयोग करें।

रबी/जायद मूंगफली की बुवाई के समय खेत की ऊपरी 10 सें.मी. सतह का तापमान 18^0 सेंटीग्रेड से कम नहीं होना चाहिए। उत्तरी क्षेत्र में जहां जायद मूंगफली की खेती की जाती है वहां पर फरवरी-मार्च में बुवाई की जाती है। महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व अन्य राज्यों में नवंबर से जनवरी तक रबी या जायदकालीन मूंगफली की बुवाई के लिए उचित तापमान उपलब्ध होता है। खरीफ मौसम की फसल की बुवाई का उचित समय जून का दूसरा पखवाड़ा है। असिंचित क्षेत्रों में बुवाई वर्षा के बाद की जाती है, जुलाई के पहले पखवाड़े में बुवाई के काम को पूरा कर लें।

किस्मों और मौसम के अनुसार खेत में पौधों की संख्या में अंतर रखा जाता है। गुच्छेदार किस्मों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सें.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखें। फैलने वाली किस्मों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 से 60

सें.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सें.मी. रखें। रबी/जायद मौसम में प्रति इकाई क्षेत्र में खरीफ मौसम की तुलना में पौधों की अधिक संख्या रखें। मूंगफली की बुवाई सीड ड्रिल द्वारा करनी उपयोगी रहती है क्योंकि कतार से कतार और बीज से बीज की दूरी संस्तुति अनुसार आसानी से कायम की जा सकती है और इच्छित पौधों की संख्या प्राप्त होती है। यदि संभव हो मूंगफली की बुवाई मेंड़ों पर करें। बीज की बुवाई 4-6 सें.मी. की गहराई पर करने से अच्छा अंकुरण प्रतिशत मिलता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

किसी भी फसल में मिट्टी परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना उचित होता है। मिट्टी परीक्षण के अभाव में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग के साथ-साथ 5 से 10 टन प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद का उपयोग करें। नाइट्रोजन की जरूरत का अधिकांश भाग नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया से पूरा हो जाता है। अतः आवश्यक है कि बीज को बोने से पहले उपयुक्त जीवाणु खाद का टीका लगाएं। जीवाणु खाद का टीका विश्वसनीय स्थानों से ही खरीदें। बुवाई से 8-10 घंटे पहले जीवाणु खाद से बीजोपचार करें और उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर बुवाई के लिए प्रयोग करें।

नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया के शुरू होने से पहले की मांग की पूर्ति के लिए सिंचित क्षेत्रों में 20 से 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/ हैक्टेयर प्रयोग करें। फॉस्फोरस और पोटाश की मांग की पूर्ति के लिए 40-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) और 30-40 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) प्रति हैक्टेयर का प्रयोग करें। प्रमुख पोषक तत्वों के अतिरिक्त गंधक और कैल्सियम का मूंगफली की उपज और गुणवत्ता पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है। इन दोनों तत्वों की मांग की पूर्ति के लिए 200-400 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करें। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा तथा जिप्सम की आधी मात्रा बुवाई के समय मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें। जिप्सम की शेष आधी मात्रा को पुष्पावस्था के समय 5 सें.मी. की गहराई पर पौधे के पास दिया जाना चाहिए।

बारानी क्षेत्रों में 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) और 20-25 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) प्रति हैक्टेयर की दर से डालें। पौधों की बढ़वार यदि कम हो और इसके साथ-साथ जड़ों में कारगर ग्रंथियों की संख्या कम हो, उस अवस्था में अच्छी पैदावार लेने के लिए बुवाई के 30-40 दिन बाद 20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का प्रति हैक्टेयर प्रयोग करें। अम्लीय मिट्टी में 1.5-2.0 टन चूने का प्रयोग करने से मूंगफली की पैदावार में आशातीत बढ़ोत्तरी की जा सकती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों में जस्ते और बोरॉन का प्रयोग करें। जस्ते की कमी की पूर्ति हेतु 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट का प्रति हैक्टेयर प्रयोग करें। बोरॉन की कमी की पूर्ति हेतु 2 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हैक्टेयर का प्रयोग करें।

जल प्रबंधन

खरीफ मौसम की फसल प्रायः वर्षा पर निर्भर करती है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहां पानी की कमी होने पर फूल आने, नस्से बैठते समय, फूल बनते समय और दाना बनते समय फसल की सिंचाई अवश्य करें। मूंगफली की रबी/जायद मौसम की फसल में 10-15 दिन के अंतराल पर फसल की सिंचाई करें। फसल की बुवाई भी पलेवा करने के बाद करें। पानी की अधिकता के कारण जड़ें मर जाती हैं और फसल में पोषक तत्वों की भी कमी हो जाती है। अतः जहां पर अधिक पानी एकत्रित होने की संभावना हो, वहां पर निकासी का उचित प्रबंध करें।

खरपतवार प्रबंधन

मूंगफली की कम उत्पादकता के प्रमुख कारणों में से खरपतवारों का प्रकोप प्रमुख है। खरपतवारों का सही नियंत्रण न करने पर फसल की उपज में 30-70 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। मूंगफली फसल के प्रमुख खरपतवार हैं: दूब घास, माधना, सांवक, मकरा, कौन मक्की, मोथा/डिल्ला, गुम्मा और हजारदाना, इत्यादि हैं। अधिक पैदावार के लिए मूंगफली के खेत को 25 से 45 दिन की अवधि तक खरतपवारों से मुक्त रखना चाहिए। इसके लिए कम से कम दो बार निराई-गुड़ाई, पहली बुवाई के 20-25 दिन और दूसरी 40-45 दिन बाद की जानी चाहिए।

श्रमिकों की समस्या होने पर पेंडिमेथालीन (30 प्रतिशत ई.सी.) @ 1 कि. ग्रा. सक्रिय तत्व या 3 कि.ग्रा. व्यवसायिक उत्पाद प्रति हैक्टेयर बुवाई के 1 से 3 दिन पश्चात 700-800 लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। रसायन का छिड़काव करने के बाद 30-40 दिन पर एक निराई-गुड़ाई करने से अधिक उपज मिलती है।

कीट प्रबंधन

खरीफ में उगाई जाने वाली फसल में रबी एवं जायद काल की अपेक्षा तापमान एवं आर्द्रता की अधिकता के कारण कीटों का प्रकोप अधिक होता है। मूंगफली के कीटों में, सफेद गिडार एवं दीमक का प्रकोप अधिक होता है।

1. *सफेद गिंडार:* इस कीट की गिंडारें पौधों की जड़ें खाकर पूरे पौधे को सुखा देती हैं। गिंडार पीलापन लिए हुए सफेद रंग की होती हैं, जिनका सिर भूरा कत्थई या लाल रंग का होता है। यह कीट प्रथम वर्षा के बाद आसपास के पेड़ों पर आते हैं और अंडे देने के समय खेतों में आ जाते हैं। कीट के प्रौढ़ को पेड़ों पर ही नष्ट कर देना चाहिए ताकि वे खेत में अंडे न दे सकें। बीज को क्लोरपायरीफॉस 20 ईसी @ 6.5-12.0 मि.लि./कि.ग्रा. या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल @ 2.0 मि.लि./कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। इसके अलावा कार्बेरिल 50 डब्ल्यू पी @ 4 ग्रा./लि. या मोनोक्रोटोफास 36 डब्ल्यू एस सी @ 1.5 मि.लि./लि. या क्लोरपाइरीफॉस 20 ईसी @ 1.5 मि.लि./लि. का छिड़काव करें।



1. सफेद गिंडार का वयस्क भृंग



2. सफेद गिंडार



3. सफेद ग्रब से प्रभावित खेत

उद्धरण: भाकृअनुप - मूँगफली अनुसंधान निदेशालय, जूनागढ़

2. *दीमक:* यह सूखे की स्थिति में जड़ों तथा फलियों को काटती हैं। जड़ काटने से पौधे सूख जाते हैं। फली के अंदर गिरी के स्थान पर मिट्टी भर जाती है। बुवाई से पहले कार्बोफ्यूरॉन 3 सीजी @ 30 कि.ग्रा./हैक्टेयर की दर से खेत में डालें। खड़ी फसल में प्रकोप होने पर क्लोरपाइरीफॉस 20 ईसी रसायन की 3-4 लिटर मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

उपरोक्त दोनों कीटों के अतिरिक्त पत्ती के काटने वाली सूंडी, पत्तों का रस चूसने वाले कीटों तथा पत्तों में सुरंग करने वाले कीटों का भी प्रकोप होता है। इन कीटों की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड 0.4 मि.लि./लिटर पानी का 500 लिटर घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

मूंगफली की फसल को अनेक प्रकार के रोगों का सामना करना पड़ता है। मूंगफली के रोगों में पत्रदाग, गेरूआ, बड नेक्रोसिस, विषाणु तथा चारकोल रॉट प्रमुख हैं। मूंगफली के प्रमुख रोगों का प्रबंधन निम्नवत है:

1. *टिक्का रोग (पत्रदाग):* मूंगफली में टिक्का प्रमुख रोग है। इस रोग के कारण पत्तियों की ऊपरी सतह पर छोटे-छोटे गोल आकार के भूरे धब्बे बन जाते हैं। अनुकूल अवस्था में धब्बों के आकार तथा संख्या में वृद्धि होती है। अधिक प्रकोप होने पर तने और पुष्प शाखाओं पर भी धब्बे बन जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए कार्बेन्डाजिम (0.05%) + मैंकोजेब (0.2%) का 2-3 सप्ताह के अंतराल पर, रोग की शुरुआत से दो या तीन बार पत्तियों पर छिड़काव करें। टेबुकोनाज़ोल 2 डीएस @ 1 ग्राम या मैंकोज़ेब @ 3 ग्राम/किलो बीज के साथ बीज उपचार करें। पहली बार बीमारी दिखाई देने से एक पखवाड़े के अंतराल पर 500 लिटर पानी में टेबुकोनाज़ोल 500 मि.लि./हैक्टेयर का छिड़काव करने से रोग को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त फसल की खुदाई के पश्चात उसके सभी भागों को नष्ट कर दें, जिसमें अगले वर्ष के लिए कवक जीवित रहता है। पत्रदाग के लिए अवरोधी या सहनशील किस्मों जैसे आईसीजीवी 87160, आईसीजीवी 86590, आईसीजीएस 1, टीएजी 24, डीआरजी 12, सीएसएमजी 84-1, सुमन, जीपीबीडी 4, जीजेजी 32, केडीजी 123 एवं केडीजी 128 इत्यादि का प्रयोग करें।



अगेती टिक्का



पछेती टिक्का

2. *बड नैक्रोसिस (विषाणु रोग):* यह बीमारी विषाणु के कारण होती है। इस बीमारी के कारण शीर्ष कलियां सूख जाती हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है। बीमार पौधों में नई पत्तियां छोटी बनती हैं और गुच्छे में निकलती हैं। प्रायः अंत तक पौधा हरा बना रहता है। फल-फूल नहीं बनते हैं। जून के चौथे सप्ताह से पूर्व फसल की बुवाई न करें। विषाणु रोग वाहक (थ्रिप्स) कीट के द्वारा बीमार पौधे से निरोग पौधे तक फैलता है। इस कीट की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड 0.4 मि.लि./लिटर @ 500 लिटर/ हैक्टेयर या डाइमिथोएट 30 ईसी @ 1.0 लिटर/हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। रोगरोधी किस्मों जैसे आईसीजीएस 3, आईसीजीएस 37, आईसीजीएस 44, जीजी 7 और डीआरजी 17, आदि का प्रयोग करें।



3. *चारकोल रॉट:* नमी की कमी तथा तापमान अधिक होने पर यह बीमारी जड़ों में लगती है। जड़ें भूरी होने लगती हैं और पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम हेतु बीज उपचार करें। खेत में नमी बनाए रखें। दीर्घकालिक फसल चक्र अपनाएं।

4. *गेरूआ रोग (रस्ट):* इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों की निचली सतह पर नारंगी-लाल फुंसियों के रुप में प्रदर्शित होते हैं जो बाद में गहरे भूरे रंग की हो जाती हैं। पत्ती के ऊपरी भाग में भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। ये फुसियां पत्ती के डंठल, तना, पुष्प तन्तु आदि में भी बनती हैं। इस रोग के कारण पत्ती सूखकर गिर जाती हैं। रोग की रोकथाम के लिए बीज उपचार करें, रोग ग्रसित पौधों को नष्ट कर दें, डाइथेन-एम-45 या टिल्ट (प्रोपेकोनाजोल) का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें तथा रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे आईसीजीएस 5, डीआरजी 17 और आईएसएमजी 84-1, इत्यादि को उगाएं।

कटाई (खुदाई)

मूंगफली में जब पुरानी पत्तियां पीली पड़कर झड़ने लगें, फली का छिलका कठोर हो जाए, फली के अंदर बीज के ऊपर की परत गहरे गुलाबी या लाल रंग की हो जाए और बीज भी कठोर हो जाए तो मूंगफली की कटाई कर लेनी चाहिए। पकी फसल पर वर्षा होने से फलियों में ही बीज के उगने का अंदेशा रहता है, इसलिए कटाई समयानुसार सावधानी से करनी चाहिए। कटाई के बाद पौधों को सुखाएं और बाद में फलियां अलग करें। फलियों को अलग करने के बाद फिर से सुखाएं ताकि उनमें नमी की मात्रा 8.0 प्रतिशत रह जाए। फसल की कटाई में देरी होने से फसल का उपज और गुणवत्ता दोनों पर कुप्रभाव पड़ता है। पकने के बाद जब फली अधिक देर के लिए जमीन में पड़ी रहें तो उसमें कीटों और रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है, जिससे उपज में काफी कमी आ जाती है। खुदाई से पहले अगर जमीन सूखी है, तो खेत की सिंचाई कर लें। सिंचाई करने से जमीन नरम पड़ जाती है जिससे खुदाई करने में आसानी रहती है। खुदाई के बाद फलियों को अच्छी तरह साफ कर लें।

उपज

उपरोक्त तकनीकें अपनाकर मूंगफली की खरीफ की फसल से 1800-2000 कि.ग्रा. और रबी/जायद की फसल से 2000-2500 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

तिल



सिसेमम अथवा तिल भारत में उगाई जाने वाले महत्वपूर्ण खाद्य तिलहनों में से एक है। इसका वैज्ञानिक नाम *सिसेमम इण्डिकम* एल. और वानस्पतिक कुल पेडालिएसी है। इसमें गुणसूत्रों (2एन) की संख्या 26 होती है। इसके पुष्पक्रम को रसीम और फल को कैप्सूल कहा जाता है। इसका उत्पत्ति स्थान को दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका माना गया है। यह प्राचीन काल से ही भारत देश में उगाया जा रहा है। भारत दुनिया में इस फसल का एक प्रमुख उत्पादक देश है, जो कुल विश्व क्षेत्रफल का लगभग 11% एवं विश्व उत्पादन में लगभग 10 प्रतिशत योगदान देता है।

तिल में लगभग 50% तेल और 18 से 20% प्रोटीन होती है। भारत में लगभग 78% उत्पादित तिल के बीज का उपयोग तेल निकालने के लिए किया जाता है और 2.5% का उपयोग बुवाई के उद्देश्य के लिए किया जाता है और बाकी का उपयोग मिठाइयों और धार्मिक समारोहों में किया जाता है। तिल के बीजों को तेल में तलने के बाद चीनी के साथ मिलाकर मीठे भोजन में कई रूपों में खाया जाता है। तिल का 100 ग्रा. बीज 592 कैलोरी ऊर्जा प्रदान करता है। वास्तव में इसके तेल को गरीब आदमी के लिए घी का विकल्प है।

तिल के तेल में स्वयं कोई तेज गंध नहीं होती है जिसके कारण इसका उपयोग सुगंधित तेल बनाने के रूप में भी किया जाता है। निम्न श्रेणी का तेल साबुन बनाने वाले उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। इसके कई औषधीय उपयोग भी हैं। तिल की खली एक खाद्य केक है। इसे गरीब लोग चीनी के साथ मिलाकर खाते हैं, और इसका प्रयोग विशेष कर दुधारू पशुओं के चारे के रूप में भी उपयोग किया जाता है। तिल की खली में 6.2% नाइट्रोजन, 2.0 - 2.2% फॉस्फोरस एवं 1.0 - 1.2% पोटाश पाया जाता है।

सबसे महत्वपूर्ण तिल उत्पादक देश भारत, चीन, सूडान, मियांमार और मैक्सिको हैं। क्षेत्र और उत्पादन दोनों की दृष्टि से भारत विश्व में प्रथम स्थान पर है। भारत में तिल की खेती अधिकतर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, गुजरात और तमिलनाडु तक सीमित है। तिल का सर्वाधिक क्षेत्रफल उत्तर प्रदेश में है, जबकि 20 प्रतिशत तिल का उत्पादन अकेले पश्चिम बंगाल में होता है।

वर्गीकरण

निम्नलिखित विशेषताओं के आधार पर तिल की किस्मों का वर्गीकरण किया गया है ।

परिपक्वता अवधि के आधार पर वर्गीकरण

1. अगेती: कम संख्या में फूल और शाखाओं वाली किस्में।
2. पछेती: अधिक संख्या में फूलों और शाखाओं वाली किस्में।

बीज के रंग के आधार पर वर्गीकरण

1. सफेद बीजयुक्त: फूलों और शाखाओं की कम संख्या वाला।
2. काले बीज वाले: अधिक संख्या में फूल और शाखाओं वाला।

कैप्सूल में कार्पेल की संख्या के आधार पर वर्गीकरण

1. बाइकार्पेलेटम: कैप्सूल में दो कार्पेल होते हैं।
2. क्वाड्रिकार्पेलेटम: कैप्सूल में चार कार्पेल होते हैं।











गुणसूत्र संख्या के आधार पर वर्गीकरण

समूह	गुणसूत्र संख्या	प्रजातियां
समूह I	2n=26	*सेसमम इंडिकम, सेसमम अलाटम*
समूह II	2n=32	*सेसमम प्रोस्ट्रेटम, सेसमम लैसीमैटम*
समूह III	2n=64	*सेसमम रेडियेटम, सेसमम एक्सीडेंटल*

वानस्पतिक वर्णन

यह एक वार्षिक फसल है, जो 0.5 से 2.0 मीटर की ऊंचाई तक बढ़ती है। तिल में दो प्रकार की जड़ प्रणालियां देखी गयी हैं। जल्दी पकने वाली किस्मों में मूसला जड़ में केवल कुछ द्वितीयक और तृतीयक जड़ें होती हैं। देर से पकने वाली किस्मों में एक अच्छी तरह से विकसित जड़ प्रणाली होती है जिसमें मूसला जड़ अधिक गहराई तक जाती है और मिट्टी की सतह के पास बड़ी संख्या में द्वितीयक और तृतीयक जड़ें रहती हैं। तना सीधा, खंड में, सामान्यतः चौकोर होता है। तने का रंग हल्के हरे से लगभग बैंगनी लेकिन मुख मुख्य रूप से गहरे हरे रंग का होता है। तने का ऊपरी भाग विशेष रूप से छोटे बालों से ढका होता है।

तिल के पौधे की पत्तियां आकार और माप में बहुत परिवर्तनशील होती हैं। आमतौर पर निचली पत्तियां चौड़ी होती हैं जबकि ऊपरी संकीर्ण होती हैं। तने पर पत्तियों की व्यवस्था विपरीत, मिश्रित हो सकती है। पत्तियों का आकार लंबाई में 3 से 17 सें.मी. और चौड़ाई 1 से 7 सें.मी. तक हो सकती है। तिल के पुष्पक्रम को रेसीम कहते हैं। फूल पत्तियों की धुरी में और तने और शाखाओं के ऊपरी भाग पर उगते हैं। फूल आकार और रंग में भिन्न होते हैं। फूल में दो होंठों वाला, ट्यूबलर कोरोला होता है जिसमें पांच पालियां होती हैं जो आधार पर एकजुट होती हैं। कोरोला का रंग सफेद से बैंगनी तक भिन्न होता है। चार पुंकेसर को दो जोड़े में समूहीकृत किया जाता है, पुंकेसर का एक जोड़ा दुसरे से छोटा होता है। फूल सुबह जल्दी खिलते हैं और आमतौर पर शाम को झड़ जाते हैं। तिल में मुख्य रूप से स्वं-परागण होता है, लेकिन कीटों द्वारा काफी हद तक प्राकृतिक पर-परागण भी होता है।

तिल का फल एक कैप्सूल की तरह होता है जिसमें दो या चार अंडप होते हैं। कैप्सूल में असंख्य बीज पैदा होते हैं। बीज छोटे, अंडाकार, थोड़े चपटे और ऊपरी भाग पर कुछ पतले होते हैं। बीज का रंग मुख्यता काला, सफ़ेद या भूरा होता है।

जलवायु

तिल मूलतः उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय के गर्म क्षेत्रों की फसल है। यह मैदानी इलाकों के साथ-साथ 1250 मीटर की ऊंचाई तक जा सकती है। 25-27° सेंटीग्रेड का तापमान तेजी से अंकुरण, प्रारंभिक वृद्धि और फूल बनने को प्रोत्साहित करता है। फूल आने के समय कम तापमान के परिणामस्वरूप बाँझ पराग की समस्या उत्पन्न हो सकती है, या समय से पहले फूल गिर सकते हैं। तिल जल भराव और लगातार भारी बारिश के प्रति बेहद संवेदनशील है। तिल के विकास के सभी चरणों में ओलावृष्टि से क्षति होने की आशंका रहती है। पाला भी इस फसल के लिए हानिकारक है। उत्तर भारत में इसकी खेती ख़रीफ़ फसल के रूप में की जाती है लेकिन दक्षिण भारत में इसकी खेती ख़रीफ़ और रबी दोनों मौसमों में की जाती है।



फसल प्रणाली

तिल को शुद्ध और मिश्रित दोनों ही तरह से ख़रीफ फसलों के रूप में उगाया जाता है। उत्तर भारत में तिल आमतौर पर अरहर, ज्वार, बाजरा, मूंगफली, कपास और मक्का की फसलों के साथ मिश्रित करके उगाई जाती है। ख़रीफ ऋतु में तिल की एकल फसल के बाद रबी मौसम में अलसी, चना, जौ, मसूर आदि की फसलें उगाई जाती है।

मृदा

तिल को विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है, लेकिन अच्छी जल निकास वाली एवं वह पर्याप्त नमी वाली रेतीली दोमट मिट्टी में तिल की खेती सबसे अच्छी होती है। अत्यधिक रेतीली, क्षारीय एवं अम्लीय मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती है। पीएच 5.5 से 8.0 के बीच वाली मिट्टी में फसल अच्छी तरह से विकसित होती है । इस फसल को अच्छी जल निकासी वाली दोमट और भारी मिट्टी वाली दोमट भूमि पर भी उगाया जा सकता है।

किस्में

इसकी दो प्रकार की किस्में होती हैं, काले बीज वाली और सफेद बीज वाली। आमतौर पर यह माना जाता है कि सफेद बीज वाली किस्मों के बीज में काले बीज वाली किस्मों की तुलना में तेल का प्रतिशत अधिक होता है। भारत में तिल के प्रजनन का काम ज्यादातर सफेद बीज वाली किस्मों पर केंद्रित है। विभिन्न राज्यों में खेती के लिए अनुशंसित तिल की उन्नतिशिल किस्में सारणी 1 में दी गयी हैं।

सारणी 1. विभिन्न राज्यों/ क्षेत्रों के लिए अनुशंसित तिल की अधिक उपज देने वाली किस्में

किस्म	अनुमोदन वर्ष	तेल (%)	उपज (कि.ग्रा./है.)	अनुशंसित राज्य/क्षेत्र
टी.के.जी.-306	2007	49-52	750-800	ख़रीफ़, मध्य प्रदेश
एस.डब्ल्यू.बी. -32-10-1 (सावित्री)	2008	48-52	1200-1500 ग्रीष्म	रबी/ ग्रीष्म, पश्चिम बंगाल
जवाहर तिल-12 (पी.के.डी. एस.-12)	2008	48-52	700-750	ग्रीष्म ऋतु, मध्य प्रदेश
जवाहर तिल-14 (पी.के.डी. एस.-8)	2009	50-53	700-750	ग्रीष्म ऋतु, मध्य प्रदेश
गुजरात तिल -3	2009	48-52	750-800	ख़रीफ़, गुजरात का सौराष्ट्र क्षेत्र
आर.टी.-346	2009	49-51	750-800	ख़रीफ़, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र
पी.के.वी.-एन.टी.-11	2009	50-53	800-850	ग्रीष्म ऋतु, महाराष्ट्र का विदर्भ क्षेत्र



किस्म	अनुमोदन वर्ष	तेल (%)	उपज (कि.ग्रा./है.)	अनुशंसित राज्य/क्षेत्र
डी.एस.एस.-9	2009	48-50	600-650	कर्नाटक का जोन-I और जोन-II
जे.एल.टी.-408	2010	51-53	700-800	खानदेश और विदर्भ, मराठवाड़ा क्षेत्र के आसपास के क्षेत्रों का सुनिश्चित वर्षा क्षेत्र
आर.टी.-351	2011/ 2009	48-50	700-800	राजस्थान, गुजरात, यूपी, महाराष्ट्र, हरियाणा, पंजाब, एचओ, केके और जम्मू-कश्मीर
टी.के.जी.-308	2010	48-50	700-750	मध्य प्रदेश (खरीफ)
शुभ्रा	2012	48-52	800-900	ओडिशा (खरीफ, ग्रीष्म)
गुजरात तिल-4	2012	47-49	750-800	ख़रीफ़, गुजरात का उत्तर सौराष्ट्र क्षेत्र IV
डी.एस. -5	2012	49-51	600-700	ख़रीफ़, ग्रीष्म, कर्नाटक
एच.टी. 9713	2013	48-50	650-700	ओडिशा
पी.के.वी.-एन.टी.-11	2015	-	800-850	ग्रीष्म, महाराष्ट्र
स्मारक (ओ.एस.सी. 560)	2015	48-52	800-900	ओडिशा
सुभ्रा (ओ.एस.सी. 207)	2015	48-52	800-900	ओडिशा
वी.आर.आई. 3	2018	50-52	850-950	तमिलनाडु
ए.एस.टी.-1 (इ.इ.यू.डी.आर. 9304-14-4-1)	2020	-	750-1040	असम
ए.ए.यू.एस.एच.एल. तिल 1	2022	-	1000-1200	असम
आश्रित (ओ.यू.ए.टी. कलिंगा सीसेम-1	2023	-	850-900	ओडिशा
गुजरात तिल-7	2023	-	457-1000	गुजरात
जगतियाला तिल-1	2023	-	1050-1100	तेलंगाना
फुले पुरना (जे.एल.टी.-408-2)	2023	-	700-800	ग्रीष्म; मराठवाडा क्षेत्र (महाराष्ट्र) के खार्देश एवं उसके आस-पास के क्षेत्र



खेत की तैयारी

तिल के बीज बहुत छोटे होते हैं, इसलिए इनकी बुवाई के लिए खेत को अच्छे से तैयार करना चाहिए, आमतौर पर एक जुताई के बाद दो से तीन बार हैरो से जुताई करने के बाद पाटा लगाने से खेत बुवाई के लिए अच्छी स्थिति मे तैयार हो जाता है।

बीज और बुवाई

उत्तर भारतीय परिस्थितियों में तिल की बुवाई का उचित समय जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक है। इसके उचित अंकुरण के लिए 25-27° सेंटीग्रेड तापमान उपयुक्त होता है। दक्षिण भारत में ख़रीफ़ ऋतु के मध्य बुवाई का समय मई से जुलाई तक हो सकता है और रबी ऋतु के लिए अक्टूबर से नवंबर तक फसल को पंक्तियों में बोया जाना चाहिए। पंक्तियों के बीच 45 सें.मी. और पौधों के बीच 15 सें.मी. की दूरी रखनी चाहिए। एक हैक्टेयर में बुवाई के लिए सामान्यतः 3-4 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। चूंकि बीज आकार में बहुत छोटा होता है, इसलिए एक समान वितरण के लिए बीजों को सूखी मिट्टी या रेत या पिसी हुई खाद के साथ मिला कर बुवाई करनी चाहिए। बुवाई की गहराई 2-3 सें.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। बुवाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। बुवाई से पहले बीज को थीरम या कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 2.5 ग्रा./किग्रा बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन

तिल आमतौर पर छोटे और सीमांत किसानों द्वारा बिना खाद वाली अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि पर उगाया जाता है। बुवाई से एक महीने पहले 20-25 टन कंपोस्ट या गोबर की खाद के प्रयोग से अच्छे परिणाम मिले हैं। अधिक उपज प्राप्त करने के लिए जैविक खाद के अलावा 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस ($पी_2ओ_5$) और 30 कि.ग्रा. पोटाश ($के_2ओ$) प्रति हैक्टेयर का उपयोग करें। नाइट्रोजन और फॉस्फोरस के उपयोग से प्रति पौधे कैप्सूल की संख्या और प्रति कैप्सूल बीज की संख्या बढ़ जाती है। फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय डालें। रेतीली मिट्टी में नाइट्रोजन को तीन भागों में और भारी मिट्टी में दो भागों में डालें। रेतीली मिट्टी में एक तिहाई नाइट्रोजन बुवाई के समय, एक तिहाई बुवाई के 30 दिन बाद और शेष एक तिहाई बुवाई के 50 दिन बाद डालें। भारी मिट्टी में बुवाई के समय दो तिहाई और फूल आने के समय एक तिहाई से आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ है।

जल प्रबंधन

आमतौर पर तिल की फसल को सिंचाई करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है, लेकिन यह फसल विभिन्न विकास चरणों में सूखे के प्रति अतिसंवेदनशील होती है। संपूर्ण विकास के दौरान फसल को लगभग 50 सें.मी. पानी की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बुवाई के 25-40 दिन बाद करें। फसल को गिरने से बचाने के लिए शांत हवा रहित शाम को फूल आने पर दूसरी और तीसरी सिंचाई करनी चाहिए। फूल आने की अवस्था पर या उसके तुरंत बाद सिंचाई करना आवश्यक माना जाता है ताकि कैप्सूल पूरी तरह से विकसित हो सकें।

खरपतवार नियंत्रण

ख़रीफ मौसम के दौरान तिल की फसल आमतौर पर खरपतवारों से भारी मात्रा में प्रभावित होती हैं। तिल के पौधों की धीमी प्रारंभिक वृद्धि उन्हें अधिक शक्तिशाली खरपतवारों के साथ कमजोर प्रतिस्पर्धी बनाती है। इसलिए



खरपतवार से प्रभावित खेतों में फसल की वृद्धि के प्रारंभिक चरण में निराई-गुड़ाई करना आवश्यक है। पहली निराई-गुड़ाई पौधे के 15-20 सें.मी. लंबे होने पर या बुवाई के लगभग 20-25 दिन बाद करनी चाहिए। पौधों को पंक्तियों में 15 सें.मी. की दूरी पर रखने के लिए निराई-गुड़ाई के साथ-साथ विरलीकरण भी करना चाहिए। दूसरी निराई-गुड़ाई बुवाई के 40-45 दिन बाद करें। शाकनाशियों के प्रयोग से भी खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। फ़्लूक्लोरेलिन (बेसालिन) की 1 किग्रा मात्रा/हैक्टेयर के हिसाब से को 800-1000 लिटर पानी में घोल बनाकर बुवाई से पूर्व छिड़काव के रूप में प्रभावी शाकनाशी के रूप में उपयोग किया जा सकता है। तिल की फसल बोने से पहले इसे मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

कीट प्रबंधन

तिल की फसल के सबसे महत्वपूर्ण कीट निम्नलिखित हैं।

1. *पत्ती मोड़क और कैप्सूल छेदक:* यह एक गंभीर कीट है जो फसल वृद्धि की सभी अवस्थाओ में हमला करता है। पूर्ण विकसित सूंडी (कैटरपिलर) हरे रंग की होती है जिसके पूरे शरीर पर छोटे-छोटे काले बिंदु होते हैं। सूंडी ऊपरी पत्तियों को जाल में फंसाते हैं और फूल तथा कैप्सूल में छेद कर देते हैं। शुरुआती हमले से पूरा पौधा नष्ट हो जाता है, जबकि बाद के चरणों में अंकुरों पर संक्रमण के कारण आगे की वृद्धि और फूल आना रुक जाते हैं। देर से बोई जाने वाली फसल और किस्मों को अधिक नुकसान होता है। यह कीट सितंबर से नवंबर तक सक्रिय रहता है। नुकसान को कम करने के लिए जल्दी बुवाई करना उचित रहता है। जब भी सूंडीयों की आबादी आर्थिक क्षति स्तर से अधिक हो जाए तो थियामेथोक्साम 25 डब्ल्यूजी (एक्टारा) @ 100 ग्रा. या इमिडाक्लोप्रिड 200 एसएल (इमिडासेल/कॉन्फिडोर) @ 100 मि.लि./हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
2. *जैसिड्स:* जैसिड्स रस चूसते हैं और माइकोप्लाज्मा जनित रोग को फैलाते हैं, जो पुष्पक्रम की विकृति को प्रेरित करता है। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियां सूखकर गिर जाती हैं। जैसिड्स, सफेद मक्खी या एफिड्स (माहू) के प्रबंधन के लिए नीम तेल, निम्बेसिडीन या अचूक 2.5 लिटर/हैक्टेयर को 0.1% डिटर्जेंट पाउडर के साथ मिलाकर छिड़काव करें। जब भी इनकी आबादी आर्थिक क्षति स्तर को पार कर जाए तो थियामेथोक्साम 25 डब्ल्यूजी (एक्टारा) @ 100 ग्रा. या इमिडाक्लोप्रिड 200 एसए (इमिडासेल/कॉन्फिडोर) @ 100 मि.लि./हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
3. *तिल हॉक मोथ:* तिल हॉक मोथ की सूंडीयां (कैटरपिलर) पत्तियों को खाती हैं और पौधों को नष्ट कर देती हैं। ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें; मानसून से पहले बुआई से बचें; संस्तुत बीज दर का उपयोग करें; और पौधों के बीच अनुशंसित अंतर बनाए रखें। संक्रमित पौधों के हिस्सों, अंडों के समूह और युवा लार्वा (सूंडीयों) को इकट्ठा करें और नष्ट कर दें। जब इस कीट की संख्या (10 प्रति मीटर पंक्ति लंबाई) को पार कर जाए तो इसके प्रभावी नियंत्रण के लिए क्लोरपाइरीफॉस 20 ईसी @ 1.5 लिटर/हैक्टेयर या क्विनालफॉस 25 ईसी @ 1.5 लिटर/हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
4. *बिहार रोमिल सूंडी:* यह तिल का एक गंभीर कीट है। परिपक्व सूंडियां (कैटरपिलर) अन्य पौधों की ओर पलायन करती हैं और काफी तेजी से पत्तियों को खाती हैं। यह मुख्य तने को छोड़कर पौधे के सभी भागों



को खाती हैं। सितंबर के महीने और अक्टूबर की शुरुआत में ये बहुत गंभीर स्तर पर पहुंच सकती हैं। इनके प्रबंधन के लिए ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें; मानसून से पहले बुवाई से बचें; संस्तुति बीज दर का उपयोग करें और पौधों के बीच अनुशंसित अंतर बनाए रखें; संक्रमित पौधे के हिस्सों, अंडों के समूह और युवा लार्वा (सूंडियों) को इकट्ठा करके नष्ट कर दें। निगरानी रखने और आबादी को कम करने के लिए संक्रमित पौधों के हिस्सों को 10 दिनों में कम से कम एक बार हटा दें और उन्हें खाद के गड्ढे में दबा दें। जब इस कीट की संख्या 10 प्रति मीटर पंक्ति लंबाई को पार कर जाए तो इसके प्रभावी नियंत्रण के लिए क्लोरपाइरीफॉस 20 ईसी @ 1.5 लिटर/हैक्टेयर या क्विनालफॉस 25 ईसी @ 1.5 लिटर/हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

5. *तिल गाल मक्खी:* तिल गाल मक्खी कीट महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और केरल का एक प्रमुख तिल कीट है। मक्खी के छोटे सफेद कीड़े युवा कैप्सूलों (फलियों) को खाते हैं और पौधे में जलन पैदा करते हैं। परिणामस्वरूप कैप्सूल बौने, मुड़े हुए और विकृत हो जाते हैं। साइपरमेथ्रिन 10 ईसी @ 550 मि.लि. या डिफ्लूबेंज़ुरोन 25 डब्ल्यूपी @ 1150 ग्रा. या इमिडाक्लोप्रिड 48 एफ.एस. @ 1200 मि.लि. का 500 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
6. *तिल की कली मक्खी:* यह कीट नाजुक आंतरिक पुष्प अंगों को खाता है, जिसके परिणामस्वरूप कोरोला (दलपुंज) और पुंकेसर ख़राब हो जाते हैं और कैप्सूल (फली) का निर्माण विफल हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए बीज को थाईमेथोक्सम 30 एफ.एस. @ 8 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें या डिफ्लूबेंजुरॉन 25 डब्ल्यूपी @ 1150 ग्रा. को 500 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

रोग प्रबंधन

तिल में कई रोगों का प्रकोप होता है। कुछ महत्वपूर्ण रोगों के लक्षण एवं नियंत्रण के उपाय नीचे दिए गए हैं।

1. *फिलोडी:* यह तिल का सबसे विनाशकारी रोग है जो हर उस खेत में होता है जहां भी यह फसल उगाई जाती है। यह रोग लीफ हॉपर (पत्ती फुदका) कीट के माध्यम से प्रसारित होने वाले माइकोप्लाज्मा जैसे जीव के कारण होता है। यह रोग फसल में फूल आने के समय स्पष्ट दिखायी देता है। एक या अधिक पुष्प अंग पूरी तरह या आंशिक रूप से हरी पत्तेदार संरचनाओं में बदल जाते हैं जिसके बाद प्रचुर मात्रा में वनस्पति विकास होता है। अत्यधिक संक्रमित पौधों के लक्षणों में शीर्ष प्रसार, छोटी पत्तियां, छोटे इंटरनोड्स (पर्व या पोरी) और असामान्य शाखाओं के साथ अत्यधिक असामान्य वृद्धि का उत्पादन शामिल है। संक्रमित पौधे का ऊपरी भाग भारी गुच्छों में बदल जाने से शाखाएं नीचे की ओर झुक जाती हैं। आंशिक रूप से संक्रमित पौधा निचले हिस्से पर कैप्सूलों (फलियों) का उत्पादन कर सकता है लेकिन ऐसे कैप्सूल में बीज हल्के और उनमे तेल की मात्रा कम होती हैं। रोग के प्रसार को रोकने के लिए हरे पत्ती फुदकों को एसिटामिप्रिड 20 एसपी @ 3 ग्रा./लिटर पानी में घोल बनाकर पत्तियों पर छिड़काव करना चाहिए। इस घोल की 500 लिटर मात्रा एक हैक्टेयर फसल के लिए पर्याप्त होगी।
2. *फाइटोफ्थोरा अंगमारी:* यह रोग मृदा जनित कवक *फाइटोफ्थोरा पैरासिटिका* वैरायटी *सेसमी* के कारण होता है। रोग के लक्षण पत्तियों पर छोटे पानी से लथपथ अनियमित धब्बों की उपस्थिति से प्रकट होते हैं। ये धब्बे बाद में बढ़ते हैं और अंततः पत्तियां सूख कर गिर जाती हैं। तने पर भूरे रंग के क्षेत्र सभी दिशाओं में फैल

जाते हैं। तने की छाल ढीली हो जाती है और उसे छीला जा सकता है। प्रारंभिक संक्रमण में पौधे फूल पैदा करने में विफल हो जाते हैं और समय से पहले मर जाते हैं। इसके प्रबंधन के लिए फसल की बुवाई के लिए अच्छे जल निकास वाले खेतों का चयन करें क्योंकि खराब जल निकास वाली मिट्टी रोग के प्रकोप को बढ़ावा देती है। ज़िनेब @ 2.0 कि.ग्रा. को 500 लिटर पानी/हैक्टेयर या मेटालैक्सिल + मैनकोज़ेब @ 3.0 ग्रा./लिटर पानी में मिलाकर 10-15 दिनों के अंतराल पर पहला छिड़काव रोग दिखाई देने के साथ शुरू करके तीन से चार बार छिड़काव करना चाहिए।

3. *जड़ और तना सड़न:* इन रोगों का कारक *मैक्रोफोमिना फेज़ियोली* और *स्क्लेरोटियम बटाटिकोला* कवक होते हैं। रोग के लक्षण संक्रमित पौधों की जड़ों, तने, कैप्सूल (फली) और बीजों पर देखे जा सकते हैं। तने की जड़ों और कॉलर क्षेत्र में भूरा रंग दिखाई देता है जो बाद में ऊपर की ओर बढ़ता है। धीरे-धीरे पूरा पौधा भूरे रंग का हो जाता है। भारी रूप से संक्रमित पौधे बीज पैदा करने में विफल हो जाते हैं और बीज सिकुड़े हुए और वजन में बहुत हल्के होते हैं। इस रोग के प्रबंधन के लिए बीज को बुवाई से पहले कैप्टन 4 ग्रा./कि. बीज या विटावैक्स + थीरम 3 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। संक्रमित खेतों में लगातार तिल की फसल नहीं लेनी चाहिए।

4. *सर्कोस्पोरा पत्ती धब्बा:* यह रोग *सर्कोस्पोरा सेसमी* नामक कवक के कारण होता है। सामान्यतः रोग के लक्षण फसल में फूल आने की अवस्था में दिखाई देते हैं। पत्ती की दोनों सतहों पर हल्के भूरे रंग के धब्बे होते हैं। आकार में वृद्धि के साथ ये धब्बे एक-दूसरे के साथ मिलकर पत्तियों पर 5-15 मि.मी. व्यास के बड़े धब्बे बनाते हैं। यदि मौसम में उच्च आर्द्रता लंबे समय तक बनी रहती है तो संक्रमित पत्तियां काले रंग की हो जाती हैं और फिर पौधे जल्द ही नष्ट हो जाते हैं। ज़िनेब या मैन्कोज़ेब @ 2 कि.ग्रा. को 500 लिटर पानी/हैक्टेयर में घोलकर छिड़काव करें। प्रतिरोधी किस्में उगाएं।

5. *अल्टरनेरिया लीफ स्पॉट:* यह रोग *अल्टरनेरिया सेसमी* नामक कवक के कारण होता है। यह बीजपत्र की पत्तियों पर सीमांत घावों या छोटे काले धब्बों के रूप में प्रकट होता है जो बाद में ऊपरी पत्तियों पर फैल जाता है। तत्पश्चात पौधे, पत्तियो के गंभीर रूप से झड़ने और तने के संक्रमण के कारण मर जाते हैं। इस रोग के प्रबंधन के लिए बुवाई से पहले सिस्टेमिक (सर्वांगी) कवकनाशी जैसे बेनलेट या बाविस्टिन, आदि से बीज का उपचार करें। रोग प्रकट होने पर जिनेब या मैन्कोजेब (0.2%) का छिड़काव करें।

6. *जीवाणु अंगमारी (बैक्टीरियल ब्लाइट):* यह रोग *जेन्थोमोनस सेसमी* नामक जीवाणु के कारण होता है। संक्रमित बीजों से निकलने वाले अंकुरों के बीजपत्रों पर छोटे-छोटे पानी से लथपथ धब्बे विकसित हो जाते हैं। पुराने अंकुरों और असली पत्तियों पर गहरे भूरे से काले रंग और गोल से कोणीय आकार के धब्बे दिखाई देते हैं। धब्बे बाद में एक दूसरे के साथ मिल जाते हैं। प्रभावित पत्तियां समय से पहले ही झड़ जाती हैं। इसी तरह के घाव तने और डंठलों पर भी देखे जा सकते हैं। इसके प्रबंधन के लिए बुवाई से पहले बीज को एग्रोमाइसिन (0.025%) के मिश्रित घोल से 9 घंटे तक उपचारित करें। रोग दिखाई देने पर फसल पर बाविस्टिन 500 ग्रा. का 500 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर के हिसाब से 10 दिनों के अंतराल पर तीन बार छिड़काव करें।



7. *पत्ती कर्ल:* यह रोग निकोटियाना वायरस (विषाणु) 10 के कारण होता है। यह विषाणु, माहू (एफिड) द्वारा संक्रमित पौधों से स्वस्थ पौधों में फैलता है। संक्रमित पत्तियों का नीचे की ओर मुड़ना रोग का सबसे स्पष्ट लक्षण है। संक्रमित पत्तियों का रंग गहरा होता है। आकार में कमी और भंगुरता मुड़ी हुई पत्तियों की सबसे आम विशेषताएं हैं। गंभीर रूप से संक्रमित पौधे में कैप्सूल (फली) का निर्माण नहीं होता है। रोग के फैलाव को रोकने के लिए इस रोग के वाहक माहू के नियंत्रण के लिए डाइमेथोएट की 1 मि.लि. मात्रा को एक लिटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करना चाहिए। 500 लिटर घोल 1 हैक्टेयर में छिड़काव के लिए पर्याप्त होगा।

कटाई एवं मड़ाई

जब पत्तियां और कैप्सूल (फलियां) पीले पड़ जाएं और पतझड़ शुरू हो जाए तब फसल की कटाई करें। पौधों के आधार पर (पुराने) कैप्सूल पहले परिपक्व होते हैं और फिर ऊपर की ओर परिपक्व होने लगते हैं। पौधों की कटाई तब करनी चाहिए जब वे पीले-भूरे रंग के हो जाएं। इन्हें खेत में मृत अवस्था में खड़ा नहीं रहने देना चाहिए, अन्यथा बिखरने से काफी नुकसान हो सकता है। कटाई के बाद खलिहान में खड़े बंडलों को सूखने के लिए पांच से सात दिनों के लिए रख दें और फिर उनकी मड़ाई करें।

उपज

किस्म, खेती की विधि और मौसम की स्थिति के आधार पर उपज में व्यापक रूप से उतार-चढ़ाव होता है। हालांकि, यदि उपरोक्त बताई गई सभी सस्य क्रियाओं अपनाया जाए तो 800-1000 कि.ग्रा. बीज/हैक्टेयर आसनी से प्राप्त हो जाता है।

अरंडी



अरंडी एक महत्वपूर्ण अखाद्य तिलहनी फसल है। यह फसल यूफोरबिएसी कुल का एक सदस्य है जिसे मोनोटाइपिक माना जाता है और यह एकमात्र प्रजाति है जिसमें कई बहुरूपी प्रकार शामिल हैं। परंतु खेती की जाने वाली प्रजातियां बौनी व वार्षिक होती हैं। अरंडी का उत्पत्ति स्थान संभवत: इथियोपिया को माना जाता है। यह भी उल्लेख मिलता है कि अरंडी की उत्पति भारत और अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में हुई है। अरंडी मुख्य रूप से भारत, चीन और ब्राजील के उष्णकटिबंधीय और उप-उष्णकटिबंधीय जलवायु में उगाया जाता है। अरंडी उत्पादन में भारत विश्व में प्रथम स्थान पर है। भारत में अरंडी सबसे पुरानी खेती वाली फसलों में से एक मानी जाती है और संस्कृत साहित्य में इसका उल्लेख भी किया गया है।

देश में अरंडी उत्पादक प्रमुख राज्य गुजरात, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और उड़ीसा हैं। यह उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश और बिहार राज्यों में भी उगाई जाती है। दिलचस्प बात यह है कि गुजरात और राजस्थान में इसे उच्च उत्पादकता वाली सिंचित परिस्थितियों में उगाया जाता है एवं दोनों राज्य सिंचित परिस्थितियों मे देश के कुल अरंडी क्षेत्रफल का 87 प्रतिशत योगदान करते हैं, जबकि वर्षा-आधारित खेती का योगदान कुल क्षेत्रफल का 13 प्रतिशत ही है जिसमें आंध्र प्रदेश और अन्य राज्यों के क्षेत्र शामिल हैं।

इसकी फसल को मुख्य रुप से बीज उत्पादन के लिए उगाया जाता है। अरंडी के बीज से निकाले गए तेल का उपयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है। इसके बीज में तेल की औसत मात्रा 45-47 प्रतिशत होती है, जिसका उपयोग घरेलू, औषधीय और औद्योगिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है। अरंडी के तेल का उपयोग मशीनरी के सभी चलायमान

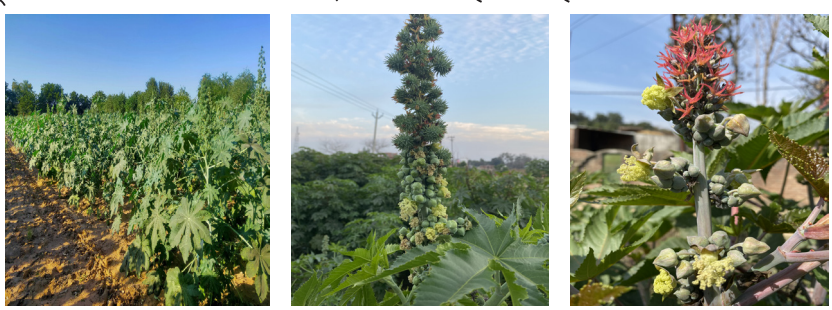
हिस्सों और विशेष रूप से उच्च गति वाले इंजनों और हवाई जहाजों में स्नेहक के रूप में किया जाता है। हाइड्रोजनीकृत अरंडी के तेल का उपयोग पॉलिश, वार्निश, पारदर्शी कागज, लिनोलियम, प्लास्टिसाइजर, मलहम, मोम, मुद्रण स्याही, सौंदर्य प्रसाधन, हेयरड्रेसिंग, साबुन आदि में किया जाता है।

अरंडी के तेल का उपयोग रेचक के रूप तथा कई पशु चिकित्सा पद्धतियों में भी किया जाता है। इसकी जड़ काफी गहरी होती है जिसके कारण यह सूखे के प्रति सहनशील और त्वरित वृद्धि करने वाली फसल मानी जाती है। अरंडी की खली खेतों की फसलों के लिए जैविक खाद का एक अच्छा स्रोत है क्योंकि इसमें नाइट्रोजन 4.5 प्रतिशत, फॉस्फोरस 1.75 प्रतिशत और पोटाशियम 1.5 प्रतिशत तक पाया जाता है। इसके तेल को वैश्विक स्तर पर विशेष रासायनिक उद्योग के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह हाइड्रोक्सीलेट फैटी एसिड का एकमात्र व्यावसायिक स्रोत है। इस फसल के विभिन्न उपयोगों का विवरण सारणी 1 में दिया गया है।

सारणी 1. अरंडी के विभिन्न उत्पादों और उपोत्पादों का उपयोग

उत्पाद / उपोत्पाद	उपयोग
हरी पत्तियां	'एरी रेशम' के कीड़ों के भोजन के रूप में
पत्तियों का चूर्ण	माहू, मच्छरों और घुनों के लिए प्रतिरोधी के रूप में
तना लुग्दी	पेपर और स्ट्रॉबोर्ड
अरंडी लाइपेज	लॉन्ड्रिंग और ड्राई क्लीनिंग फॉर्मूलेशन
अरंडी की खली	खेतों में फसलों के लिए जैविक खाद के रूप में

अरंडी के पौधे में मूसला जड़ पायी जाती है जो कि मिट्टी की निचली सतह में तने के विस्तार की तरह दिखती है। तना सीधा, गोलाकार, आंशिक रूप से खोखला, चिकना और अच्छी चिकनी शाखाओं वाला होता है। तना या तो लाल या हरा या दोनों रंगों वाला होता है एवं मोम के आवरण से ढका होता है। प्राकृतिक वातावरण में तना बहु-शाखाओं वाला होता है। पत्तियां एकांतर, बड़ी और हथेली के आकार की होती हैं जिनमें 5-11 लोब नोकदार, दांतेदार किनारों वाली होती हैं। पुष्पक्रम मुख्य और पार्श्व शाखाओं पर अंतिम रूप से विकसित होता है। फूल बड़े होते हैं, टर्मिनल सब पैनिकल्ड रेसमीज में, एकलिंगी, एपेटलस, झुमके के ऊपरी भाग पर मादा फूल और निचले भाग पर नर फूल होते हैं। फल गोल चमकदार कैप्सूल होता है जिसके तीन उभरे हुए किनारे सख्त कांटों से ढके या चिकने होते हैं, 3 गुहाओं वाले और तीन बीज वाले होते हैं। बीज एल्ब्यूमिनस, प्रतीप बीजाण्ड, चौड़े, अंडाकार और एक चिह्नित कैरुनकल के साथ संकुचित होते हैं। अंकुर निकलने से लेकर कैप्सूल के परिपक्व होने तक की अवधि किस्म के साथ भिन्न होती है। औसतन कम फूल वाली प्रजातियां 140 से 160 दिन में परिपक्व हो जाती हैं।



अरंडी के पौधे की वानस्पतिक संरचना



फसल प्रणाली

अरंडी को या तो शुद्ध फसल या मिश्रित फसल के रूप में उगाया जाता है। इस फसल की सबसे लोकप्रिय प्रणालियां जिन्हें किसानों द्वारा व्यापक स्तर पर अपनाया जाता है, निम्नवत हैं:

फसल चक्र

अरंडी एक दीर्घकालिक फसल है और देश के अधिकतर हिस्सों में एक वर्ष में इसकी एक ही फसल संभव है। गहन प्रबंधन और सिंचाई की व्यवस्था होने पर कुछ क्षेत्रों में अरंडी के बाद कोई दूसरी फसल एक वर्ष में उगाई जा सकती है। उदाहरण के लिए गुजरात में अरंडी की अगेती किस्मों या संकरों को उगाकर इसके बाद एक वर्ष में एक अन्य फसल को उगाया जा सकता है। इस तरह के फसल चक्र निम्नवत हैं:

अरंडी-मूंगफली

अरंडी-तिल

अरंडी- सूरजमुखी

अंतर्फसली खेती

अरंडी + अरहर (1:1)

अरंडी + लोबिया (1:2)

अरंडी + उड़द (1:2)

अरंडी + मूंग (1:2)

अरंडी + मूंगफली (1:5/1:7)

अरंडी + सोयाबीन (1:1)

अरंडी + सूरजमुखी (1:1)

अरंडी + हल्दी (1:5)

जलवायु

अरंडी की फसल अपेक्षाकृत सूखे के प्रति सहनशील होती है और यह शुष्क और गर्म क्षेत्रों में अच्छी तरह से बढ़वार करती है। अरंडी को कम आर्द्रता के साथ मध्यम उच्च तापमान 20 से 27^{0} सेंटीग्रेड की आवश्यकता होती है। जहां लगभग 80-100 मि.मी. समान रूप से वर्षा होती है उन क्षेत्रों मे अरंडी की खेती आसानी से की जा सकती है। इसकी बढ़वार के लिए स्पष्ट गर्म धूप वाले दिन सबसे अनुकूल होते हैं। यह लंबे समय तक सूखे के साथ अधिक वर्षा को भी सहन कर सकती है। फूल आने के समय उच्च तापमान के साथ लंबे समय तक बादल छाए रहने के कारण बीज और फूल खराब हो सकते हैं।



पुष्पन (फूल बनने के समय) पर 41^{0} सेंटीग्रेड से ऊपर का तापमान भले ही कम अवधि के लिए हो, फूलों को नष्ट कर देता है। आर्द्रता के साथ उच्च तापमान अधिक नर फूलों के उत्पादन के लिए आदर्श जलवायु प्रदान करता है और कम तापमान मादा फूलों के उत्पादन के लिए सबसे अनुकूल होता है। उपरोक्त के कारण ही रबी ऋतु संकर बीज उत्पादन के लिए सबसे आदर्श माना जाता है। फूल आने के समय भारी वर्षा से उपज में कमी आ जाती है। भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में फसल अत्यधिक वानस्पतिक विकास करती है और बहुवर्षीय प्रवृत्ति प्राप्त कर लेती है। अरंडी का पौधा ठंड के लिए अति संवेदनशील होता है।

मृदा

अरंडी को लगभग सभी प्रकार की अच्छी जल निकास वाली मिट्टी में उगाया जा सकता है। यह फसल जल भराव के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होने के कारण इसके लिए चिकनी मिट्टी अनुपयुक्त होती है। यह फसल आम तौर पर प्रायद्वीपीय भारत में लाल दोमट मिट्टी और उत्तरी राज्यों में हल्की जलोढ़ मिट्टियों पर उगाई जाती है। निचली मृदाएं, मूल्यवान वाणिज्यिक और खाद्य फसलों के लिए उपयुक्त नहीं होने की वजह से अक्सर अरंडी की फसल उगाने के काम मे ली जाती हैं। हालांकि, इसकी खेती ऊपरी इलाकों तक ही सीमित होनी चाहिए क्योंकि यह फसल जल भराव की स्थिति के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है। यह फसल मिट्टी की क्षारीयता को सहन नहीं कर सकती लेकिन मिट्टी की थोड़ी से मध्यम अम्लता को सहन कर सकती है।

उन्नत किस्में

वर्षा-आधारित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्में कम से मध्यम अवधि वाली होनी चाहिएं। इस फसल की विभिन्न अनुशंसित किस्मों/ संकरों का उल्लेख सारणी 2 में किया गया है।

सारणी 2. विभिन्न राज्यों के लिए अरंडी की अनुशंसित किस्में / संकर

राज्य	प्रकार	अनुशंसित किस्में/ संकर
आंध्र प्रदेश	किस्में	ज्योति, क्रांति, किरण, हरिता, 48-1 (ज्वाला)
	संकर	जीसीएच-4, डीसीएच-32, डीसीएच-177, पीसीएच-1, डीसीएच 519
गुजरात	किस्में	वीआई-9, जीएयुसी-1, एसकेआई-73, जीसी-2, जीसी-3
	संकर	जीएयूसीएच-1, जीसीएच-2, जीसीएच-4, जीसीएच-5, जीसीएच-6, जीसीएच-7, डीसीएच-519
कर्नाटक	किस्में	आरसी-8, ज्योति, 48-1
	संकर	जीसीएच-4, डीसीएच-32, डीसीएच-177, डीसीएच-519
महाराष्ट्र	किस्में	ज्योति, एकेसी-1, 48-1
	संकर	जीसीएच-4, डीसीएच-177, डीसीएच-3, डीसीएच-519
राजस्थान	किस्में	ज्योति, 48-1
	संकर	जीसीएच-4, जीसीएच-5, डीसीएच-32, आरएचसी-1, डीसीएच-177, डीसीएच-519

तमिलनाडु	किस्में	एसए-2, टीएमवी-5, टीएमवी-6, ज्योति, सीओ-1,48-1
	संकर	जीसीएच-4, डीसीएच-32, टीएमवीसीएच-1, डीसीएच-177, डीसीएच 519, वाईआरसीएच-1
उत्तर प्रदेश	किस्में	टी 3, टी 4, 48-1, कालपी-6, चंद्रप्रभा
हरियाणा और पंजाब	किस्में	सीएच-1, ज्योति, 48-1
	संकर	जीएयुसीएच-1, जीसीएच-2, जीसीएच-4, जीसीएच-5, डीसीएच-32, डीसीएच-77, डीसीएच-519

खेत की तैयारी

गहरी जड़ वाली फसल होने के कारण अरंडी के लिए अच्छी तरह से तैयार बीज सैय्या की आवश्यकता होती है। मिट्टी में कठोर परत को तोड़ने के लिए गर्मियों में गहरी जुताई आवश्यक है ताकि शुष्क अवधि के दौरान जड़ें मिट्टी की गहरी परत से नमी प्राप्त करने के लिए गहराई तक प्रवेश कर सकें। गहरी जुताई से मिट्टी की जल धारण क्षमता भी बढ़ती है। ढेलों को तोड़ने, बीज सैय्या को समतल करने और खरपतवार को नष्ट करने के लिए जुताई के बाद डिस्क हैरो की जानी चाहिए।

बीज और बुवाई

इसकी बुवाई के लिए 1 जुलाई से 15 अगस्त तक का समय सबसे उपयुक्त माना जाता है। अगेती बुवाई अर्थात 15 जून की फसल में सेमी-लूपर कीट का प्रकोप देखा जाता है। अतः यदि अगेती बुवाई की जाती है तो इस कीट के उचित नियंत्रण उपाय अपनाने के बाद ही बुवाई करनी चाहिए। वर्षा का लाभ लेने के लिए इसे जल्दी उगाया जाता है।

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए संकर बीज को हर साल तथा उन्नत किस्मों के बीज को 4-5 साल में एक बार बदलना आवश्यक होता है। एक बार उपयोग में लाने के बाद संकर बीजों को दोबारा प्रयोग में नहीं लिया जा सकता है। बीज की मात्रा, बीज के आकार एवं कतारों की दूरी पर निर्भर करती है। बारानी फसल के लिए प्रति हैक्टेयर 12.15 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। चौभकर बुवाई करने पर 5.6 कि.ग्रा./है. बीज पर्याप्त रहता है। बीज भूमि में 5 सें.मी. से अधिक गहरा नहीं बोना चाहिए। अरंडी के लिए बुवाई की अनुशंसित दूरी निम्न प्रकार है:

	वर्षा-आधारित स्थिति	सिंचित स्थिति
किस्में	90 सें.मी. x 60 सें.मी.	90 सें.मी. x 90 सें.मी.
संकर	120 सें.मी. x90 सें.मी.	150 सें.मी. x120 सें.मी.

सिंचित स्थितियों में चिकनी मिट्टी के लिए 150 सें.मी. × 150 सें.मी. की व्यापक दूरी भी अपनाई जा सकती है। कम अवधि वाली किस्म टीएमवी 5 के लिए 60 सें.मी. × 30 सें.मी. की दूरी अपनाई जा सकती है।

अच्छे अंकुरण एवं फसल को कुछ ख़ास रोगों से बचाने के लिए बीज उपचार आवश्यक होता है। बुवाई से पहले बीजों को 20 घंटे के लिए पानी में भिगो दें। बुवाई पूर्व बीजों को टेबुकोनाजोल ट्राइफ्लोक्सीस्ट्रोबिन 75 प्रतिशत का 4 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज अथवा कार्बोक्सिन 37.5 प्रतिशत या थिरम 37.5 प्रतिशत 3 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज के साथ बीज

उपचार करें। उपरोक्त रसायनों के स्थान पर बीज को 10 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से *ट्राइकोडर्मा विरडी* अथवा *ट्राइकोडर्मा हार्जियनम* से भी बुवाई-पूर्व उपचारित कर सकते है। *ट्राइकोडर्मा विरडी* अथवा *ट्राइकोडर्मा हार्जियनम* को खेत में सीधे भी बुवाई-पूर्व मिलाया जा सकता है। इसके लिए 2.5 कि.ग्रा. *ट्राइकोडर्मा विरडी* 100 कि.ग्रा. अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ मिश्रित कर प्रति हैक्टेयर बुवाई-पूर्व मिट्टी में भलीभांति मिला दें जिससे उकठा रोग के प्रबंधन में मदद मिलती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

गोबर की खाद फसल को पोषण प्रदान करने के साथ-साथ मिट्टी में नमी बनाए रखने और उसकी भौतिक अवस्था में सुधार लाती है। 10-12 टन गोबर की खाद/हैक्टेयर पर्याप्त होती है। जहां तक संभव हो एनपीके उर्वरकों का प्रयोग मूल रूप से मिट्टी परीक्षण की सिफारिशों के अनुसार ही करें। यदि मृदा परीक्षण अनुशंसाएं उपलब्ध नहीं हैं तो निम्नानुसार व्यापक अनुशंसा का पालन करें:

सारणी 3. पोषक तत्वों की अनुशंसित खुराक

क्षेत्र	अनुशंसित एन: पी$_2$ओ$_5$: के$_2$ओ (कि.ग्रा./है.)
असिंचित क्षेत्र	
किस्म (वैरायटी)	40 : 20 : 00
संकर (हाइब्रिड)	60 : 30 : 30
सिंचित क्षेत्र	
किस्म (वैरायटी)	60 : 30 : 30
संकर (हाइब्रिड)	80 : 40 : 20

वर्षा-आधारित स्थितियों में फॉस्फोरस एवं पोटेशियम की संपूर्ण मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा को बुवाई के समय पर प्रयुक्त करना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा मिट्टी की नमी की उपलब्धता के आधार पर एक या दो बार खड़ी फसल में बुरक (टॉप ड्रेसिंग) दें। सिंचित स्थितियों में फॉस्फोरस एवं पोटेशियम की संपूर्ण मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा को बुवाई के समय पर प्रयुक्त करना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा को बुवाई के 30 वें और 60 वें दिन पर दो बराबर भागों में बांटकर बुरक (टॉप ड्रेसिंग) दें।

जल प्रबंधन

अरंडी की खेती अधिकतर वर्षा-आधारित स्थिति में की जाती है। हालांकि, देखा गया है कि यह सिंचाई के प्रति बहुत अच्छी प्रतिक्रिया देता है। गहरी जड़ वाली फसल होने के कारण अरंडी मिट्टी में काफी गहराई से पानी खींच सकती है। इस प्रकार सिंचाई अपेक्षाकृत हल्की और बार-बार करनी चाहिए। अधिक पैदावार लेने के लिए जहां भी संभव हो 2-3 आवश्यक होती हैं। फूल आने की अवस्था में मिट्टी में नमी की कमी होने पर अनिवार्य रूप से एक सिंचाई प्रदान की जानी चाहिए। भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में उचित जल निकासी सबसे अधिक आवश्यक है। इस फसल में टपकदार (बूंद-बूंद) सिंचाई को अपनाकर जल की बचत की जा सकती है।

खरपतवार प्रबंधन

प्रारंभिक अवस्था में अरंडी की फसल पर खरपतवारों का अधिक प्रभाव होता है तथा खरपतवार पौधों से प्रतिस्पर्धा करते हैं। इस फसल में खरपतवार प्रतियोगिता की अवधि 15-60 दिन के बीच पाई गई है। इसका अर्थ यह है कि उपरोक्त अवधि में यदि खरपतवारों का नियंत्रण न किया जाए तो फसल की उपज में सर्वाधिक गिरावट आती है। अतः उपरोक्त अवस्था पर फसल को खरपतवारों से मुक्त रखने के लिए फसल की दो बार निराई-गुड़ाई करें। अरंडी की फसल में रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण के लिए 1.0 कि.ग्रा. पेंडीमेथालिन (सक्रिय) तत्व को 500 लिटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरंत बाद खेत में छिड़क दें। बाद में यदि खरपतवार आते हैं तो उनको एक निराई-गुड़ाई करके नियंत्रित कर लेना चाहिए।

कक्षीय कलियों का तोड़ना

यदि प्राथमिक स्पाइक के उद्भव के तुरंत बाद मुख्य शूट (शाखा) पर सभी अक्षीय कलियों को तोड़ दिया जाता है और इस प्रकार एक मुख्य स्पाइक को विकसित होने दिया जाता है, तो न केवल फसल की अवधि कम हो जाती है, बल्कि उपज में भी काफी वृद्धि होती है।

पाले से बचाव

पाले से फसल को बचाने के लिए पाला पड़ने की संभावित अवधि के पहले 1 लिटर व्यापारिक गंधक के तेजाब को 1000 लिटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव कर दें। पाले से प्रभावित फसल में हल्की सिंचाई करें और उसमें 10 कि.ग्रा. अतिरिक्त नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर को यूरिया टोप ड्रेसिंग के रूप में देवें।

कीट प्रबंधन

सेमिलूपर कीट: यह कीट चलते समय एक अर्ध लूप बनाता है, इसीलिए इसे सेमीलूपर कहा जाता है। बारिश के मध्य इस कीट का अत्यधिक प्रकोप होता है। इसकी सूंडियां पत्तियों को खाती हैं और कई बार केवल मध्यशिरा और तना ही बचते हैं। अधिक संख्या होने पर ये अरंडी के फल और बीजों को भी खाती हैं। इनके नियंत्रण के लिए नीम के बीज की गिरी का 5% सस्पेन्शन या नीम की पत्ती का अर्क 10% की दर से 10 से 40 मि.लि. प्रति 10 लिटर पानी में घोल कर छिड़काव करें। उपरोक्त के अतिरिक्त इस कीट की रोकथाम के लिए क्विनलफास की 1 लिटर मात्रा को 700-800 लिटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव भी कर सकते हैं।

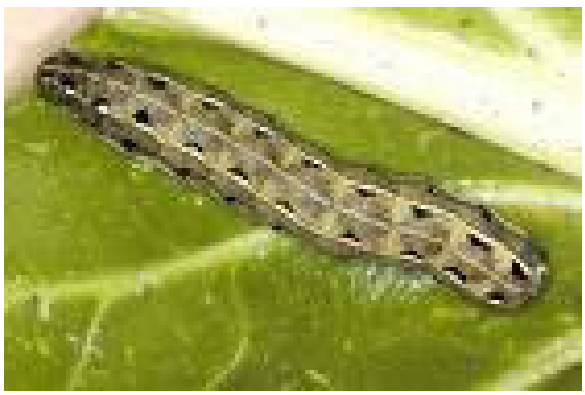




अरंडी का सेमिलूपर कीट

बिहार रोमिल सूंडी: अन्य खरीफ फसलों की तुलना में ये सूंडियां अरंडी की फसल को अधिक नुकसान पहुंचाती है। इस कीट की साल में 3 पीढ़ियां हो सकती हैं। ये सूंडियां पत्तियों को खाती हैं जो बाद में गिर गिर सकती हैं। इनकी रोकथाम के लिए जैसे ही इस कीट के खेत में अंडे दिखाई दें, उन्हें पत्तियों सहित चुनकर जमीन में गाड़ देना चाहिए। साथ ही इन सूंडियों की उग्र दशा की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड @ 1.0 मि.लि. प्रति 3.0 लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़क दें। उपरोक्त के अतिरिक्त इसके नियंत्रण के लिए क्विनलफास 1.5% या फेनवरलेट 0.4% धूल (डस्ट) @ 25 कि.ग्रा./ है. का अवधूलन / धूलन (डस्टिंग) भी किया जा सकता है।

तंबाकू की इल्लियां (सूंडियां): इनके द्वारा अधिकतर हानि पत्तियां झड़ने से होती है। खराब हुई पत्तियों के साथ छोटे अंडों और नष्ट हुई पत्तियों के साथ इल्लियों को एकत्र कर नष्ट कर दें। जब 25 प्रतिशत से अधिक पत्तियों पर हानि हो तब क्लोरपायरीफास 20 ईसी @ 2.0 मि.लि./ लिटर पानी या प्रोफेनोफास 50 ईसी @ 1.5 मि.लि./लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।



तंबाकू की इल्लियां (सूंडियां)

कैप्सूल (संपुट/ बीजकोष) बेधक: इस कीट की इल्लियां कैप्सूल को खाती हैं। कैप्सूल में जाली और उत्सर्जित पदार्थ देखा जा सकता है। 10 प्रतिशत कैप्सूल प्रभावित होने पर क्विनलफास 25 ईसी @ 1.5 मि.लि./लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।





कैप्सूल (संपुट अथवा बीजकोश) बेधक

रोग प्रबंधन

उकठा रोग: बीजपत्र की अवस्था पर पौधे धीरे-धीरे पीले होकर रोगी दिखाई देने लगते हैं। ऊपरी पत्तियां और शाखाएं मुड़कर मुरझा जाती हैं। इसके प्रबंधन के लिए उकठा-प्रतिरोधी किस्मों को उगाया जाना चाहिए। रोग से बचाव के लिए *ट्राइकोडर्मा विरिडि* 10 ग्रा/.कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। इसके प्रबंधन के लिए फसल चक्रों को अपनाना नितांत आवश्यक होता है।

जड़ गलन: यह एक कवक जनित रोग है जिसमें ऊपरी जड़ें सूखी दिखाई देने लगती हैं। साथ ही जड़ों की छाल भी निकलने लगती है। इस रोग के प्रबंधन के लिए फसलों के अवशेषों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। अनाज की फसलों के साथ फसल चक्र अपनाएं। प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करना लाभकारी रहता है। *ट्राईकोडर्मा विरिडी* 4 ग्रा./कि.ग्रा. अथवा थिरम 2.5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें।

अल्टरनेरिया अंगमारी: बीजपत्र की पत्तियों पर हल्के भूरे गोल धब्बे दिखाई देते हैं और परिपक्व पत्तियों पर सघन छल्लों के साथ नियमित धब्बे होते बनते हैं। बाद में यह धब्बे मिलने से अंगमारी होती है और पत्तियां झड़ जाती हैं। रोगाणुओं के सतह पर जमा होने से अपरिपक्व कैप्सूल भूरे से काले होकर गिर जाते हैं। परिपक्व कैप्सूल पर काली कवकीय वृद्धि होती है। थिरम/कैप्टान 2-3 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। फसल वृद्धि के 90 दिनों के आरंभ पर आवश्यकतानुसार 2-3 बार 15 दिनों के अंतराल पर मैंकोजेब 2.5 ग्रा./लि. या कॉपर ऑक्सीक्लोराईड 3.0 ग्रा/.लि. का छिड़काव करें।

चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू): पत्तियों की निचली सतह पर सफेद चूर्ण की वृद्धि होती है। पत्तियां बढ़ने से पहले ही भूरी हो कर झड़ जाती हैं। बुवाई के तीन महीने बाद से आरंभ कर दो बार वेटेबल सल्फर 0.2 प्रतिशत का 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।



चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू)



पर्णचित्ती रोग: इस रोग में पहले पत्तियों पर छोटे-छोटे धब्बे उभरते हैं, फिर ये बाद में भूरे रंग के बड़े धब्बों में बदल जाते हैं। 1% बोर्डोएक्स मिक्स्चर या 2% कॉपर ऑक्सीक्लोराईड की दर से छिड़काव करने से इस रोग की रोकथाम की जा सकती है। उपरोक्त के स्थान पर मैंकोजेब 2.0 ग्रा./लिटर पानी की दर से घोल बनाकर 10-15 दिन के अंतराल पर 2 छिड़काव करने से इस रोग को कम किया जा सकता है।

कटाई एवं मड़ाई

इसे परिपक्व होने में 145-180 दिन लगते हैं। जब कैप्सूल पीले पड़ जाएं तो कटाई की जाती है। हालांकि, सभी कैप्सूल एक ही समय में परिपक्व नहीं होते हैं। मुख्य रेचीज पर केंद्रीय स्पाइक पहले परिपक्व होती है और उसके बाद पार्श्व शाखाओं पर स्पाइक्स परिपक्व होने लगते हैं। इसलिए, पूरी फसल की कटाई के लिए आम तौर पर दो से तीन तुड़ाई की आवश्यकता हो सकती है। मुख्य बाली 90 से 100 दिन में कटाई के लिए तैयार हो जाती है तथा शेष बाली की कटाई उनकी परिपक्वता के अनुसार 15 दिन के अंतराल पर करनी चाहिए। समय से पहले पकने वाली बालियों की कटाई से उपज कम होती है और अंततः खराब गुणवत्ता वाला तेल प्राप्त होता है। बालियों को चार से पांच दिनों तक सूरज की रोशनी में सुखाना चाहिए और फिर सूखे कैप्सूलों को लकड़ी के डंडों से पीटकर या बैल के पैरों के नीचे रौंदकर या विद्युत चलित थ्रेशर की मदद से गहाई करनी चाहिए। बीजों को अलग करने के लिए कैस्टर शेलर का उपयोग करें या सूखे कैप्सूल को लकड़ी के तख्तों से पीटें, पोंछें और बीज इकट्ठा करें। इस उद्देश्य के लिए बिजली से चलने वाले यांत्रिक थ्रेशर भी उपलब्ध हैं।

उपज

इसकी उपज असिंचित परिस्थियों में 1500-2000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर तथा सिंचित परिस्थितियों में 3000-3500 कि.ग्रा./हैक्टेयर तक होती है।

कपास



कपास, मालवेसी परिवार का एक सदस्य और वैज्ञानिक रूप से *गॉसिपियम* वंश में सम्मिलित है। फसल श्रेणी में "रेशों का राजा" के रूप में प्रसिद्ध है। भारत में कपास एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसल है, जो वैश्विक कपास उत्पादन में लगभग 25% का योगदान देती है। कपड़ों की मूलभूत आवश्यकता, जो भोजन के बाद दूसरे स्थान पर आती है, कपास निर्यात के माध्यम से भारत की शुद्ध विदेशी मुद्रा को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में अपने आर्थिक प्रभाव के लिए पहचाने जाने वाले कपास को इसके महत्वपूर्ण योगदान के कारण इसे "सफ़ेद सोना" (व्हाइट-गोल्ड) कहा जाता है। भारत कपास की खेती के मामले में विश्व स्तर पर शीर्ष स्थान रखता है। कपास की खेती भारत के विभिन्न राज्यों में की जाती है, जिनमें प्रमुख कपास उत्पादक राज्य गुजरात, महाराष्ट्र, तेलंगाना, मध्य प्रदेश, कर्नाटक आदि शामिल हैं। भारत में लगभग 67% कपास की खेती वर्षा आधारित क्षेत्रों में की जाती है, जबकि शेष 33% सिंचित क्षेत्रों में की जाती है।

जलवायु

कपास को उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय स्थितियों में उगाया जाता है। अंकुरण के लिए दैनिक न्यूनतम तापमान 16° सेंटीग्रेड और उचित फसल वृद्धि के लिए 21° सेंटीग्रेड से 27° सेंटीग्रेड की आवश्यकता होती है। फल लगने की अवस्था के दौरान दिन का तापमान 27° सेंटीग्रेड से 32° सेंटीग्रेड और ठंडी रातों की आवश्यकता होती है। उपज की अच्छी गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए मध्य सितंबर से नवंबर तक कपास चुनने की अवधि में तेज़ धूप वाले दिन होने चाहिए।



फसल प्रणाली

देश के प्रमुख कपास-उत्पादक राज्यों के लिए संस्तुत फसल चक्र एवं अंतर्फसली प्रणालियों का उल्लेख सारणी 1 में किया गया है।

सारणी 1. कपास फसल-आधारित देश के विभिन्न राज्यों के लिए संस्तुत फसल चक्र एवं अंतर्फसली प्रणालियां

राज्य	फसल चक्र	अंतर्फसली प्रणाली
पंजाब, हरियाणा, राजस्थान	कपास - गेहूं कपास - सरसों कपास - बरसीम	नहीं की जाती
मध्य प्रदेश	कपास की एक फसल कपास - ज्वार कपास –गेहूं	कपास + उड़द कपास + सोयाबीन
गुजरात	कपास की एक फसल कपास - ज्वार कपास - गेहूं	संकर कपास + मूंगफली देसी कपास + उड़द
महाराष्ट्र	कपास की एक फसल कपास - ज्वार	कपास + मूंग/उड़द कपास + सोयाबीन कपास + मूंगफली
कर्नाटक	कपास की एक फसल कपास-गेहूं	कपास + मिर्च/प्याज (सिंचित) कपास (डी.सी.एच.32) + धान (अधिक वर्षा वाले क्षेत्र)
तमिलनाडु	कपास की एक फसल धान - कपास धान – धान - कपास कपास - ज्वार कपास - दलहनी फसल-ज्वार	कपास + प्याज कपास + मूंगफली कपास + उड़द
आंध्र प्रदेश	कपास की एक फसल कपास - धान कपास - मिर्च कपास - तंबाकू	कपास + उड़द कपास - मिर्च कपास + उड़द



मृदा

कपास विश्व में विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जाता है। उच्च जल धारण क्षमता और अच्छी आंतरिक जल निकासी वाली गहरी, उपजाऊ मृदाएं कपास उगाने के लिए सबसे उपयुक्त होती हैं। कपास अत्यधिक नमी और जल भराव के प्रति संवेदनशील है। भारत की प्रमुख कपास उगाने वाली मिट्टी उत्तरी क्षेत्र में रेतीली से रेतीली मिट्टी (एंटिसोल और इंसेप्टिसोल), मध्य भारत में काली मिट्टी (वर्टिसोल) और दक्षिणी क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की लाल (अल्फिसोल), जलोढ़ (इंसेप्टिसोल) और मिश्रित लाल और काली मृदाएं उपयुक्त हैं।

उन्नत किस्में

भारत में कपास की चारों जातियों की खेती की जाती है: *गॉसिपियम अर्बोरियम* एवं *गॉसिपियम हर्बेसियम* (एशियाई कपास), *गॉसिपियम बार्बडेंस* (मिस्र कपास), और *गॉसिपियम हिर्सुटम* (अमेरिकन कपास)। इनमें से, *गॉसिपियम हिर्सुटम* भारत में संकर कपास उत्पादन का 94% हिस्सा है, और सभी मौजूदा बीटी कपास संकर इसी जाति से संबंधित हैं। भारत में कपास का अधिकांश उत्पादन दस प्रमुख कपास उत्पादक राज्यों में केंद्रित है, जिन्हें तीन अलग-अलग कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है:

i) उत्तरी क्षेत्र - पंजाब, हरियाणा और राजस्थान

ii) मध्य क्षेत्र - गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश

iii) दक्षिणी क्षेत्र - तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु

कपास की मुख्य किस्मों एवं संकरों का उल्लेख सारणी 2 में किया गया है।

सारणी 2. कपास उगाने वाले कुछ राज्यों के लिए कपास की संस्तुत किस्में एवं संकर

राज्य	देसी कपास		अमेरिकन कपास		अमेरिकन बीटी कपास	
	किस्में	संकर	किस्में	संकर	किस्में	संकर
हरियाणा	सीआईसीआर-1; सीआईसीआर-3; एचडी 123; एचडी 324; एचडी 432	सीआईसीआर-2; एएएच 1; केआर 64	सीएसएच 3129; सीएसएच 3075; एच 1098; एच 1117; एच 1226; एच 1236; एच 1300	सीएसएच 198; सीएसएच 238; सीएसएच 243; सीएसएच 1862;	सीआईसीआर बीटी 6	राज्य के लिए संस्तुत बीटी संकरों का चयन करें
पंजाब	एलडी 1019; एलडी 949; एफडीके 124; सीआईसीआर-1; सीआईसीआर-3	सीआईसीआर-2	एफ 2228; एल एच 2108; सीएसएच 3129; सीएसएच 3075	एलएचएच 144; एचएचएच 287; एचएचएच 223; सीएसएच 198; सीएसएच 238; सीएसएच 243; सीएसएच 1862	सीआईसीआर बीटी 6; पीएयू बीटी 2; पीएयू बीटी 3	



राज्य	देसी कपास		अमेरिकन कपास		अमेरिकन बीटी कपास	
	किस्में	संकर	किस्में	संकर	किस्में	संकर
राजस्थान	एचडी 123; आरजी 8; आरजी 18; आरजी 542; सीआईसीआर-1; सीआईसीआर-3	राज डीएच 9; सीआईसीआर-2	आरएस 875; आरएस 2013; आरएस 810; आरएसटी 9; बीकानेरी नरमा; गंगानगर अगेती; सीएसएच 3129; सीएसएच 3075	राज एचएच 16; सीएसएच 198; सीएसएच 238; सीएसएच 243; सीएसएच 1862		
महाराष्ट्र	एकेए-5; एकेए-7; एकेए-8; एकेए-8401;	पीकेवीडीएच-1; पीकेवी सुवर्णा	एकेए-09-5; पीकेवी रजत; एकेएच-8828; एकेए-081	पीकेवी हाइब्रिड-2; पीकेवी हाइब्रिड-4; पीकेवी हाइब्रिड-5		
गुजरात	जी ;2-जीएडीसी कोट-13; जी कोट-21; जी कोट-15; जी कोट-19; जी कोट-13; जी कोट-13	जी कोट देसी संकर-7; जी कोट देसी संकर-9; जी कोट देसी ;संकर-11	जी कोट-10; जी कोट-16; जी कोट-102; जी कोट-38	जी कोट संकर-22	-	जी कोट संकर-88बीजी-II; जी कोट संकर-10बीजी-II; जी कोट संकर-12बीजी-II; जी कोट संकर-24बीजी-II; जी कोट संकर-26बीजी-II; जी कोट संकर-49बीजी-II;

खेत की तैयारी

कई बार ऊपरी मृदा के नीचे एक कठोर परत बन जाती है जो जड़ों के विकास को अवरुद्ध करती है और मृदा में जल भराव का कारण भी बन सकती है। ऐसी दशा में इस कठोर उप-मृदा सतह को तोड़ना आवश्यक होता है जिसके लिए मृदा सब-सोयलर की मदद ली जाती है। ट्रैक्टर-चालित मृदा सब-सोयलर यंत्र द्वारा 50-45 सें.मी. गहराई तक जुताई करके परत को तोड़ दिया जाता है। ढेलों को तोड़ने के लिए पाटे का प्रयोग करें जिससे खेत का समतलीकरण भी हो जाता है। यह कार्य प्रत्येक वर्ष करना आवश्यक नहीं होता है। जब महसूस हो कि इस तरह की परत अधो-भूमि में बन चुकी है तभी सब-सोयलिंग की जाए। इसके बाद खेत को पारंपरिक तरीके से तैयार करें जिससे अच्छी बीज शैय्या तैयार हो सके।

बीज एवं बुवाई

उत्तरी क्षेत्रों में फसल की बुवाई 1 अप्रैल से 15 मई के मध्य तक करें। इस अवधि के दौरान बुवाई करने से बेहतर उपज सुनिश्चित होती है और कीड़ों और बीमारियों के हमले से बचा जा सकता है। बुवाई सुबह और शाम के समय करनी चाहिए। विभिन्न राज्यों में बुवाई का समय सारणी 3 में दिया गया है। तथा बीज दर, बुवाई की दूरी और गहराई का वर्णन सारणी 4 में दिया गया है।

सारणी 3. विभिन्न राज्यों में कपास की बुवाई का उपयुक्त समय

राज्य	बुवाई का उपयुक्त समय	
	सिंचित क्षेत्र	असिंचित क्षेत्र
पंजाब	अप्रैल से 15 मई	-
गुजरात	मार्च से मई	जून से जुलाई
महाराष्ट्र	मार्च से मई	जून से जुलाई
राजस्थान	अप्रैल से 15 मई (शत प्रतिशत सिंचित)	-
कर्नाटक	15 अप्रैल से 15 मई घाट प्रभा क्षेत्र 15 जुलाई से 15 अगस्त तुंगभद्रा नहर क्षेत्र	मानसून के आरंभ होने पर पर जून में देसी कपास- अगस्त से सितंबर (धारवाड़ एवं गडग क्षेत्र)
मध्य प्रदेश	मार्च से मई	जून से जुलाई
तमिलनाडु	सितंबर से अक्टूबर ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई फरवरी से मार्च	सितंबर से अक्टूबर
हरियाणा	अप्रैल से 15 मई (शत प्रतिशत सिंचित)	-
आंध्र प्रदेश	दक्षिण-पश्चिमी मानसून के आरंभ होने से 15 अगस्त	दक्षिण-पश्चिमी मानसून के आरंभ होने से 15 अगस्त

सारणी 4. विभिन्न राज्यों के लिए कपास की बीज दर, बुवाई की दूरी (अंतरण) एवं गहराई

राज्य	बीज दर (कि.ग्रा./है.)	बुवाई की दूरी पंक्ति से पंक्ति (सें.मी.) x पौधे से पौधे की दूरी(सें.मी.)	बुवाई की गहराई (सें.मी.)
पंजाब	देसी किस्म: 7.5-8.0 देसी संकर: 3.0-5.0 अमेरिकन किस्म: 8.75-9.0 अमेरिकन संकर: 3.75-4.0 बीटी संकर: 2.0-2.5	देसी किस्म: 67.5 x 45 देसी संकर: 67.5 x 75 अमेरिकन किस्म: 67.5 x 60 अमेरिकन एवं बीटी संकर: 67.5 x 75	4 – 5
गुजरात	देसी किस्म: 10-15 देसी संकर: 3.0 अमेरिकन संकर: 2.5-4.0 बीटी संकर: 2.0-2.5	देसी किस्म (आर्बोरियम): 60 x 15/ 20 देसी किस्म (हर्बेसियम): 45 x 22.5/ 30 देसी संकर (आर्बोरियम): 90/120 x 60 अमेरिकन किस्म: 90-120 x 30/60/75 अमेरिकन संकर: 90/120 x 30/45/60	4 - 6



महाराष्ट्र	देसी किस्म: 10-12 अमेरिकन किस्म: 10-20 अमेरिकन संकर: 3.5-5.0 बीटी संकर: 2.0-2.5	असिंचित (भारी मृदा) - अमेरिकन किस्म: 60 x 60 असिंचित (मध्यम मृदा) - अमेरिकन किस्म: 60 x 30 या 90 x 90 भारी मृदा - अमेरिकन संकर: 90 x 60 मध्यम मृदा - अमेरिकन संकर: 60 x 60 भारी मृदा – देसी कपास: 60 x 15 मध्यम मृदा – देसी कपास: 45 x 22.5	3 – 4
राजस्थान	बीटी संकर: 2.0-2.5	देसी कपास: 67.5 x 30 अमेरिकन कपास: 67.5 x 30 बीटी संकर: 108 x 60 या 90 x 67.5	4 – 5
कर्नाटक	देसी किस्म: 7.5-10 अमेरिकन संकर: 2.5-3.0 बीटी संकर: 1.5	देसी: 60 x 30 या 90 x 20 किस्म/संकर: 90 x 60	5 - 6
मध्य प्रदेश	देसी किस्म: 10-12 अमेरिकन किस्म: 10-20 बीटी संकर: 1.5	देसी: 60 x 60 बीटी संकर: 90 x 60 या 90 x 90	3 – 4
तमिलनाडु	किस्म: 7.5 बीटी संकर: 2.5	किस्म: 90 x 45 संकर/बीटी संकर: 120 x 60	5 – 7
हरियाणा	देसी किस्म: 12-15 देसी या अमेरिकन संकर: 2.5 बीटी संकर: 2.5	देसी: 67.5 x 30 अमेरिकन: 67.5 x 30 बीटी संकर: 67.5 – 150 x 45 – 60	4 – 5
आंध्र प्रदेश	किस्म: 10-12 बीटी संकर: 2.0	किस्म: 60 x 20 संकर/बीटी संकर: 90 – 120 x 45 – 60	6 – 8

बीजों के अच्छे अंकुरण के लिए इनका सर्वप्रथम अम्ल के साथ उपचार आवश्यक होता है। इसके लिए मिट्टी/ प्लास्टिक के कंटेनर में 1 कि.ग्रा. कपास के बीज के साथ 100 ग्रा. वाणिज्यिक ग्रेड सांद्र सल्फ्यूरिक एसिड मिलाएं और इसे एक मोटी लकड़ी की छड़ी के साथ दो से तीन मिनट तक जोर से हिलाएं। जैसे ही फ़ज़ घुल जाए, 10 लिटर पानी डालें, अच्छी तरह हिलाएं और छिद्रित प्लास्टिक की टोकरी से पानी निकाल दें। बीज को सल्फ्यूरिक एसिड अवशेषों से मुक्त करने के लिए इनकी तीन बार धुलाई करें। स्वस्थ रोयेंदार बीजों को छाया में पतली परत फैलाकर सुखा लें। कुछ क्षेत्रों में इसकी स्थापना पौध तैयार करके रोपाई विधि द्वारा भी की जाती है। बुवाई-पूर्व बीजों का उपचार ट्राईकोडर्मा @ 4 ग्रा. अथवा थिरम @ 3 ग्रा./ कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार कर लेना चाहिए।

कपास की बुवाई आमतौर पर सीड ड्रिल मशीन से की जाती है। कुछ किसान इसकी बुवाई देसी हल से भी करते हैं। मध्य भारत के कुछ भागों में डिबलर से भी बुवाई की जाती है जिसमें एक स्थान पर उचित गहराई पर 2-3 बीज डाल दिए जाते हैं। संकर बीजों की बुवाई अमूमन डिबलर से ही की जाती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

कपास फसल भारी मात्रा में पोषक तत्वों का मृदा से दोहन करती है। अतः मृदा में बाहर से पोषक तत्वों की आपूर्ति आवश्यक होती है। पोषक तत्वों का प्रयोग मृदा की जांच के बाद ही करना बेहतर होता है। कपास के लिए उर्वरकों की सामान्य संस्तुतियां सारणी 5 में दी गई हैं।

सारणी 5. विभिन्न राज्यों में कपास के लिए उर्वरकों की सामान्य संस्तुतियां

राज्य	दशा / परिस्थिति	उर्वरकों की मात्रा- नाइट्रोजन (एन): फास्फोरस ($पी_2ओ_5$): पोटेशियम ($के_2ओ$) (कि.ग्रा./है.)	प्रयोग विधि
पंजाब	किस्म-सिंचित	75 : 30 : 0*	फास्फोरस की संपूर्ण और नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय कूड़ों में डालें और नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा फूल बनने की आरंभिक अवस्था पर।
	संकर-सिंचित	150 : 30 : 0*	
हरियाणा	अमेरिकन किस्म-सिंचित	80-100 : 30 : 0*	किस्मों के लिए संपूर्ण फास्फोरस एवं आधी नाइट्रोजन बुवाई पर और शेष आधी नाइट्रोजन फूल बनने पर।
	देसी किस्म – सिंचित	50 : 30 : 0*	
	संकर- सिंचित	150 : 60 : 60 + 25 जिंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट	संपूर्ण फास्फोरस, पोटाश, जिंक सल्फेट एवं आधी नाइट्रोजन बुवाई पर और शेष आधी नाइट्रोजन फूल बनने पर।
राजस्थान	देसी एवं अमेरिकन किस्म- सिंचित	80 : 20 : 0	संपूर्ण फास्फोरस एवं आधी नाइट्रोजन बुवाई पर और शेष आधी नाइट्रोजन अगस्त के पहले पखवाड़े में सिंचाई के बाद।
	संकर- सिंचित	150 : 40 : 20 + 12 जिंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट	
गुजरात	संकर- सिंचित	240 : 40 : 0	संपूर्ण फास्फोरस बुवाई पर और नाइट्रोजन को पांच बराबर भागों में बांटकर बुवाई के 30, 60, 75, 90 एवं 105 दिन बाद खेत में प्रयोग करें।
	संकर-असिंचित	80 : 40 : 0	
	देसी-असिंचित	80 : 00 : 0	
महाराष्ट्र एवं मध्य प्रदेश	संकर- सिंचित	100 : 50 : 50	सिंचित संकर में संपूर्ण फास्फोरस एवं पोटाश बुवाई पर और नाइट्रोजन को तीन बराबर भागों में बांटकर बुवाई पर और पौधों के प्रादुर्भाव के 30 एवं 60 दिन बाद प्रयोग करें।
	संकर-असिंचित	80 : 40 : 40 या 90 : 45 : 45	
	अमेरिकन किस्म-असिंचित	60 : 30 : 30	
	देसी किस्म- असिंचित	50 : 25 : 25 या 40 : 20 : 20	

आंध्र प्रदेश	संकर- सिंचित	120 : 60 : 60	संपूर्ण फास्फोरस बुवाई पर और नाइट्रोजन एवं पोटाश को तीन बराबर भागों में बांटकर बुवाई के 30, 60, एवं 90 दिन बाद प्रयोग करें।
	संकर- सिंचित (धान परती)	150 : 60 : 60	
	अमेरिकन किस्म- सिंचित	90 : 45 : 45	
	अमेरिकन किस्म- असिंचित	40 : 20 : 20 या 60 : 30 : 30	
कर्नाटक	अमेरिकन संकर- सिंचित	120 : 60 : 60	सिंचित दशाओं में संपूर्ण फास्फोरस बुवाई पर और नाइट्रोजन एवं पोटाश को चार बराबर भागों में बांटकर बुवाई पर, बुवाई के 50, 80 एवं 110 दिन बाद प्रयोग करें।
	किस्म- सिंचित	80 : 40 : 40	
	संकर- असिंचित	80 : 40 : 40	
	किस्म- असिंचित	40 : 25 : 25	
तमिलनाडु	संकर- सिंचित	120 : 60 : 60	संकर एवं किस्मों के लिए संपूर्ण फास्फोरस बुवाई पर। संकर के लिए नाइट्रोजन एवं पोटाश को तीन बराबर भागों में बांटकर बुवाई पर, बुवाई के 45 एवं 65 दिन बाद प्रयोग करें। किस्मों के लिए नाइट्रोजन एवं पोटाश को दो बराबर भागों में बांटकर बुवाई और बुवाई के 45 दिन बाद प्रयोग करें।
	किस्म- सिंचित	80 : 40 : 40	
	किस्म- असिंचित	40 : 20 : 20	

*मृदा जांच के आधार पर प्रयोग करें

जल प्रबंधन

मौसमी वर्षा के आधार पर कपास को 6-4 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बुवाई के 4 से 6 सप्ताह बाद तथा बाद की सिंचाइयां दो या तीन सप्ताह के अंतराल पर करनी चाहिए। मेड़ों पर कपास बोने और कूंडों में सिंचाई करने से काफी मात्रा में पानी की बचत होती है। खराब गुणवत्ता वाले सिंचाई जल की स्थिति में, बुवाई से पहले नहर के पानी से सिंचाई करें और बाद की सिंचाई वैकल्पिक कूंडों में खराब गुणवत्ता वाले पानी से की जा सकती है। फूल आने और फल लगने की अवस्था के दौरान फसल को पानी की कमी नहीं होनी चाहिए अन्यथा बहुत सारे फूल और बाल झड़ जाएंगे, जिसके परिणामस्वरूप कम उपज होगी। कपास अपनी प्रारंभिक वृद्धि के दौरान जल भराव के प्रति बहुत संवेदनशील होती है। इसलिए ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर रुके हुए पानी को बाहर निकाल दें। इस फसल में बूंद-बूंद (टपकदार) सिंचाई को आसानी से अपनाया जा सकता है और इससे काफी मात्रा में जल की बचत होती है।



खरपतवार नियंत्रण

खरीफकालीन फसल होने के कारण इस फसल में खरपतवारों की समस्या गंभीर होती है। साथ ही अधिक दूरी पर बोने और आरंभ में इसकी धीमी वृद्धि होने के कारण भी इस फसल में खरपतवारों की समस्या अधिक आती है। आरंभिक काल में निकाई-गुड़ाई करके खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। पहली गुड़ाई पहली सिंचाई से पहले करनी चाहिए. निराई-गुड़ाई के लिए ट्रैक्टर पर लगे कल्टीवेटर/ट्रैक्टर चालित रोटरी वीडर/त्रिफाली या व्हील हैण्ड हो का भी प्रयोग किया जा सकता है। शाकनाशी रसायनों का प्रयोग करके भी खरपतवारों का नियंत्रण संभव है। बुवाई के तुरंत बाद (उद्भव-पूर्व) पेंडीमेथालिन @ 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 500 लिटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिडक दें। खड़ी फसल में (अंकुरण-पश्चात) खरपतवार नियंत्रण के लिए क्विज़ालोफास-इथाइल (5% ईसी) @ 50.5 ग्रा. सक्रिय तत्व को 500 लिटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिडक दें।

कीट प्रबंधन

वर्ष 2002 में 'बीटी कपास' और वर्ष 2006 के शुरुआत में 'बोलगार्ड 2' के बाद से भारतीय कपास पारिस्थितिकी तंत्र ने अपने कीट प्रोफ़ाइल में एक अभूतपूर्व बदलाव का अनुभव किया है। बीटी कपास ने बॉलवर्म के खिलाफ सुरक्षा प्रदान की और *हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा* के विरुद्ध भी अधिक प्रभावी रही। धब्बेदार और गुलाबी बॉलवर्म से भी सुरक्षा प्रदान की गई। वर्ष 2014 के बाद बोलगार्ड 2 पर गुलाबी बॉलवर्म अधिक प्रभावी पाया गया। विभिन्न भारतीय राज्यों में कपास पर गुलाबी बॉलवर्म के व्यापक आक्रमण की जानकारी सामने आई है। बीटी कपास अभी भी *हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा* के विरुद्ध पूर्ण सुरक्षा प्रदान करती है, हालांकि यह कीट गैर - बीटी कपास को हानि पहुंचा सकता है। समय के साथ, बीटी कपास में कुछ छोटे कीट प्रमुख कीट के रूप में उभरे हैं। वर्तमान में मिलीबग, हरा तेला, सफेद मक्खी, थ्रिप्स, माहू आदि कीटों का प्रकोप अनुभव किया जा रहा है।

रसीली पत्तियों, रसयुक्त आकर्षक फूलों और विभिन्न आकारों के फलों के साथ कपास कई कीटों को अपनी तरफ आकर्षित करती है। यह फसल बुवाई, वानस्पतिक विकास चरण, फूल आने और प्रजनन सभी अवस्थाओं पर कीटों द्वारा प्रभावित होती है। इन कीटों में से बॉलवर्म समूह कपास के लिए सबसे बड़ी चुनौती है और उसके बाद चूसने वाले कीट आते हैं। कपास उत्पादन प्रणाली में कीटों की लगभग 160 प्रजातियां कपास को आर्थिक हानि पहुंचाती हैं। कपास के विभिन्न कीटों को तीन समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(क) *बॉलवर्म समूह:* अमेरिकन सूंडी *(हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा),* चित्तीदार सूंडी *(एरियास इंसुलाना, एरीआस विट्टेला)* और गुलाबी सूंडी *(पेक्टिनोफोरा गॉसीपियला),* आदि।

(ख) *चूसक कीट:* लीफ हॉपर *(अमरास्का बिगुतुला बिगुतुला),* माहू *(एफिस गॉसिपी),* थ्रिप्स *(थ्रिप्स टेबेसी)* सफ़ेद मक्खी *(बेमेसिया टेबेसी),* मिलीबग *(फेनाकोकस सोलेनॉप्सिस)* और पपीता मिलीबग *(पैराकोकस मार्जिनेटस),* आदि।

(ग) *अन्य कीट:* भारतीय कपास मिरीड बग *(क्रियॉनटिएड्स बिसेरेटेन्स),* तना वीविल *(पेमफेरऊलस एफीनिस)* और तंबाकू इल्ली या सूंडी *(स्पोडोपटेरा लिटुरा),* आदि।

कपास फसल में विभिन्न कीटों द्वारा हानि का विवरण निम्न प्रकार है:

1. *जैसिड (हरा तेला):* इस कीट के शिशु एवं वयस्क दोनों पत्ती की निचली सतह से रस चूसकर उन्हें टेडी-मेढ़ी कर देते हैं। अंत में पत्तियां भूरी पड़कर सूख जाती हैं। इस कीट का आर्थिक क्षति स्तर है: 2 वयस्क या शिशु प्रति पत्ती।



जैसिड से प्रभावित पत्ती

2. *सफेद मक्खी:* इस कीट का रंग सफेद एवं हल्का पीला होता है और इसके दोनों पंख सफेद मोम जैसे पाउडर से ढके होते हैं। इस कीट के शिशु व वयस्क दोनों ही पौधों से रस चूसकर हानि पहुंचाते है। कीटों के मधुस्राव (हनीड्यू) करने पर काली फफूंदी आने से पत्तियों द्वारा प्रकाश संश्लेषण की क्षमता में भी कमी आ जाती है। इसके प्रकोप से पत्तियां सूख कर काली होने लगती हैं। इस कीट का आर्थिक क्षति स्तर है: 6-8 वयस्क प्रति पत्ती। ये मक्खियां कपास में पत्ती कुंचन विषाणु (मरोडिया) के वाहक का भी कार्य करती हैं।



सफेद मक्खी

3. *थ्रिप्स:* इस कीट के वयस्क छोटे एवं छरहरे और आमतौर पर पीले-भूरे रंग के होते हैं, जिनके पंख धारीदार होते हैं। साथ ही नर थ्रिप्स के पंख नहीं होते हैं। ये कीट पत्ती के ऊतकों में अंडे देते हैं। नवजात थ्रिप्स भूरे रंग के होते हैं और वयस्क थ्रिप्स ऊतकों को फाड़ कर पत्ती के भीतरी भाग की कोशिकाओं से रस चूस लेते हैं। इसके प्रमुख लक्षण पत्तियों का बहुत हल्का मुड़ना जो बाद में चांदी के रंग की हो जाती हैं, इसीलिए इन्हे 'सिल्वर लीफ' नाम से भी जाना जाता है। पत्ती का ऊपरी भाग भूरा हो जाता है। पत्तियों के कोने मुड़ जाते हैं, उनमें सिकुड़न आ जाती है जो बाद में सूख जाती हैं।

4. *माहू (चेपा):* वयस्क माहू छोटे एवं हरे-भूरे रंग के होते हैं। इनका बाह्य शरीर मुलायम होता है। माहू पत्तियों

तथा नए प्ररोहों के भीतरी भाग में इकट्ठे होकर उनका रस चूस लेते हैं। रस चूसने के कारण पत्ते मुरझाकर सूख जाते हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है।

5. *मिलीबग:* ये छोटे आकार के चूसक कीट होते हैं। ये कीट मधुरस का स्राव करते हैं जिसके कारण पत्तियों पर काले रंग के फफूंद उग आते हैं जिनके कारण प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में रुकावट आ जाती है। अधिक रस चूसने के कारण पौधे मुरझाकर सूखने लगते हैं। उपरोक्त के कारण पौधों की बढ़वार रुक जाती है।



मिलीबग

6. *गुलाबी सूंडी:* इस कीट की सूंडियां अथवा इल्लियां (लार्वा) हानिकारक अवस्था होती है। टिंडे की अवस्था में नवजात सूंडी इनमें प्रवेश करती है तथा उसके बाद प्रवेश मार्ग बंद हो जाता है। तथा विकासशील हरे बीजकोषों के अंदर गुलाबी सूंडी मौजूद रहती है। सूंडी अंतर कोष्ठकों के बीच आवगमन करती हैं। खिले हुए टिंडों में सूंडियों द्वारा की गई हानि का अवलोकन आसानी से किया जा सकता है। गुलाबी सूंडी का आर्थिक क्षति स्तर है: 8 वयस्क/ट्रैप लगातार तीन दिन या 10% प्रभावित पुष्प, कलिकाएं एवं टिंडे जीवित इल्ली के साथ।

7. *तंबाकू सूंडी:* ये सूंडियां पत्तियों को खाकर खोखला कर देती हैं जिसके कारण कई बार पत्तियों की मध्य शिराएं ही शेष रह जाती हैं। इसके बाद ये सूंडियां फूलों की कलियों में प्रवेश करती हैं। परिपक्व सूंडी पत्तियों में बड़े छेद करती है और कभी-कभी हरे टिंडों में भी छेद कर देती है।

8. *अमेरिकन सूंडी:* अंडे से निकली हुई छोटी इल्ली (सूंडी) कोमल पत्तियों को नष्ट कर देती है और इसके बाद कली एवं टिंडों की ओर बढ़ती है। सूंडी टिंडे में एक गोल एवं बड़ा छेद करती है और फिर इस छेद में अपना मुंह डालती है और शरीर का शेष भाग बाहर रहता है। इसके बाद यह टिंडे के आतंरिक पदार्थों को खाकर हानि पहुंचाती है। इस कीट का आर्थिक क्षति स्तर है: एक अंडा या एक इल्ली प्रति पौधा अथवा 5 – 10% प्रभावित क्षतिग्रस्त टिंडे।



अमेरिकन सूंडी द्वारा हानि



9. *चित्तीदार सूंडी:* शुरुआती इल्लियां शाखाओं के शीर्ष को भेदन करके खाती हैं और बाद में कलियों, फूलों और टिंडों को क्षतिग्रस्त करती हैं तथा अंदर जाने के रास्ते को अपने त्यागित मल पदार्थ से बंद कर देती हैं। कीट से प्रभावित टिंडों से उपलब्ध कपास (रूई) की गुणवत्ता में गिरावट आने से उसके बाज़ार मूल्य में कमी आती है। इस कीट का आर्थिक क्षति स्तर है: एक इल्ली/पौधा या 10% प्रभावित शाखाएं या तीन प्रभावित टिंडा/ पौधा।

प्रबंधन

कीट आमतौर पर फसलों को हानि पहुंचाते हैं इसलिए इन्हे पीड़क (पेस्ट) भी कहा जाता है। कपास में कीटों के प्रबंधन के लिए समेकित पीड़क प्रबंधन सर्वथा उपयुक्त रहता है। समेकित पीड़क प्रबंधन के प्रमुख प्रबंधन निम्न प्रकार हैं:

- स्वस्थ फसल उगाना
- कीट आबादी के निर्माण और बीमारी के प्रसार को रोकना
- लाभकारी जीवों की आबादी का संरक्षण और वृद्धि
- फसल के स्वास्थ्य और प्रमुख कीट और लाभकारी कीड़ों का नियमित क्षेत्र अवलोकन
- प्रतिरोध का प्रबंधन

अधिकतर किसान रासायनिक नियंत्रण उपायों को फसल सुरक्षा के लिए अपनी पहली पसंद मानते हैं, जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए। जब कीटों का दबाव अधिक होता तो किसान रासायनिक नियंत्रण अपनाते हैं। हालांकि इस प्रकार के नियंत्रण से खर्चा अधिक आता है और पर्यावरण भी प्रदूषित होता है। कपास में समेकित कीट प्रबंधन के अंतर्गत सस्य-क्रियाओं, भौतिक संसाधनों, जैविक विधियों और रासायनिक विधियों को इस प्रकार से समायोजित किया जाता है कि रसायनों का प्रयोग अंतिम उपचार हो। कपास में समेकित पीड़क प्रबंधन के उपाय इस प्रकार हैं:

- गहरी जुताई करके खेतों को धूप दिखाना
- खरपतवारों को नष्ट करना।
- संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग
- स्वस्थ बीज का प्रयोग एवं बीजोपचार
- फसल चक्र अपनाना
- कीटों से सुरक्षा के लिए स्थानीय कीटनाशकों का प्रयोग
- परजीवी एवं परभक्षी का प्रयोग करना
- जैविक कीटनाशियों का प्रयोग करना
- नीम से निर्मित बाजारू कीटनाशियों का प्रयोग
- आवश्कतानुसार उचित कीटनाशियों का सही समय एवं मात्रा में प्रयोग
- फसलों की लगातार देख-रेख करते रहना।

कपास के लिए आवश्यकतानुसार निम्नवत कीटनाशियों का प्रयोग किया जा सकता है (सारणी 6):

सारणी 6. कपास में कीटों के नियंत्रण के लिए कीटनाशियों के नाम एवं उनकी मात्रा

कीटनाशी	मात्रा
सूंडियां	
क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 18.5 % एससी	0.3 मि.लि./लि. पानी
फ्लुबेंडियामाइड 20% डब्लूजी	0.5 ग्रा./लि. पानी
इमामेक्टिन बेंज़ोएट 5% एसजी	0.5 ग्रा./लि. पानी
सायंट्रानिलिप्रोल 10.26% ओडी	1.5 मि.लि./लि. पानी
चूसक एवं अन्य कीट	
थियामेथोक्सम 25% डब्लूजी	0.50 ग्रा./लि. पानी
इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एसएल.	0.25 मि.लि./लि. पानी
फ्लोनिकैमिड 50% डब्लूजी	0.40 ग्रा./लि. पानी
इमिडाक्लोप्रिड 70% डब्लूजी	0.30 ग्रा./लि. पानी
एसिटामैप्रिड 20% एसपी	0.50 ग्रा./लि. पानी
प्रोफेनोफॉस 50% ईसी	4.0 मि.लि./लि. पानी

रोग प्रबंधन

1. अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा: कपास की पत्तियों पर बैंगनी किनारों वाले छोटे, भूरे और गोल धब्बे दिखाई देते हैं। बहुत से धब्बे एक साथ मिलकर पत्ती पर बड़े ऊतकक्षयी क्षेत्र बना लेते है। नमी युक्त मौसम में धब्बे काले रंग के हो जाते हैं और पत्तियां समय से पहले झड सकती हैं। इस रोग के प्रबंधन के लिए अम्ल-उपचारित, प्रमाणित और प्रतिरोधित बीजों का उपयोग करें। उपयुक्त सस्य क्रियाएं जैसे खेत की तैयारी, बीज दर एवं उर्वरक की मात्रा को अपनाया जाना चाहिए। अंतिम चुनाई के बाद फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। 2.5 ग्रा. मेनकोजेब या 3 ग्रा. कॉपर आक्सीक्लोराइड प्रति लिटर पानी का 4 - 5 बार 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।



अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा

2. *एंथ्रोकनोज़:* यह एक कवक-जनित रोग है जिसका आक्रमण अकुंर एवं टिंडों पर होता है। बीजपत्रों पर छोटा लाल धब्बा बनता है और कॉलर भाग में लंबा लाल-भूरा धब्बा बनता है। टिंडे बन्ने की लगभग सभी अवस्थाओं पर इस रोग का आक्रमण हो सकता है। आरंभ में टिंडों पर सूखे लाल से भूरे रंग के धब्बे बनते हैं, जिनके केंद्र

समय के साथ काले हो जाते हैं। रोग के प्रबंधन के लिए खेत में पानी का जमाव न होने दें। रोग ग्रस्त फसल अवशेषों को नष्ट करें। अम्ल- एवं कार्बेनडाजिम- उपचारित बीजों का उपयोग करें। साथ ही खडी फसल में रोग आने पर 1.5 ग्रा. कार्बेनडाजिम या 3.0 ग्रा. मेनकोज़ेब प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

3. *जीवाणु पत्ती झुलसा:* आरंभ में गहरे हरे, पानी सोखे हुए और गोल से लम्बे धब्बे बीजपत्रों पर बन सकते हैं जो सूखने पर भूरे रंग में बदल जाते है। बीजपत्राधार (हाइपोकोटाइल) पर धब्बे काले रंग के होते हैं और अंकुरित पौधे मर सकते हैं। रोग के तीव्र संक्रमण की स्थिति में पत्तियां गिर सकती हैं। रोग की वृद्धि के साथ-साथ अब ये धब्बे तने ताने को भी प्रभावित करने लगते हैं। रोग-रोधी किस्मों को अपनाकर इस रोग से बचा जा सकता है। अम्ल से उपचारित बीज को 3-4 ग्रा. कार्बेनडाजिम/ कि.ग्रा. बीज से भी उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए। प्रभावित पौधों के अवशेषों को नष्ट करें। स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट या टेट्रा साईक्लिन 0.01 प्रतिशत और कापर ऑक्सीक्लोराइड 0.25 प्रतिशत के मिश्रण का छिड़काव करें।



जीवाणु पत्ती झुलसा

4. *टिक्का रोग (सर्कोस्पोरा पत्ती धब्बा):* पत्तियों पर पहले लाल रंग के बिंदु बनते हैं जो बढकर लाल किनारों मे बदल जाते हैं, जिनके मध्य मे सफेद से हल्की-भूरी मृत कोशिकायें होती हैं। बाद में धब्बे अनियमित हो जाते हैं, पत्तियां पीली हो जाती हैं और गिर भी सकती हैं। रोग प्रबंधन के लिए प्रमाणित बीजों का उपयोग करें। उपयुक्त सस्य क्रियाएं जैसे खेत की तैयारी, बीज दर एवं उर्वरक की मात्रा को अपनाया जाना चाहिए। अंतिम चुनाई के बाद फसल अवशेषों को नष्ट कर दें। 2.5 ग्रा. मेनकोजेब या 3 ग्रा. कॉपर आक्सीक्लोराइड प्रति लिटर की दर घोल बनाकर 4-5 बार 15 दिन के अंतराल से छिड़काव करें।

5. *उकठा रोग:* पत्तियां आरंभ में पीली हो जाती हैं और बाद में मुरझाकर भूरे रंग में परिवर्तित होकर सूख जाती हैं। पौधों की बढवार रुक जाती है और अंत में पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम के लिए गहरी जुताई करना लाभकारी पाया गया है। पौधों के अवशेषों को नष्ट करना भी आवश्यक होता है। फसल चक्रों एवं रोग-रोधी किस्मों को उगाया जाना चाहिए। मूंग, सोयाबीन, मूंगफली, रागी, मक्का और प्याज, आदि की फसलों को कपास में अंतरवर्ती फसल के रूप में उगाया जा सकता है। 4 ग्रा. *ट्राइकोडर्मा विरिडी* या 3 ग्रा. थिरम से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

6. *जड़ सड़न:* पौधों पर पीले-काले धब्बे दिखाई देते है। पौधों की जड़ें सड जाती हैं। जड़ के अंदर काले स्कलोरेशिया विकसित हो जाते हैं। पौधा पूरा सड़ जाता है। गहरी जुताई करें और फसल के अवशेषों को खेत से हटाकर नष्ट करें। प्रतिरोधक किस्मों का ही बुवाई में प्रयोग करें। बीज को कार्बानडेजिम से उपचारित करें।



चुनाई

बाजार में अच्छी कीमत पाने के लिए कपास को साफ और सूखा चुनना चाहिए। कपास के जमीन पर गिरने से होने वाले नुकसान से बचने के लिए हर 15-20 दिनों के बाद चुनाई करनी चाहिए। चुनी हुई कपास को खेत में गीले जल नालों में न रखें, क्योंकि इससे कपास की गुणवत्ता ख़राब हो जाती है। कपास को सूखे गोदाम में रखें। विभिन्न किस्मों की उपज को अलग-अलग रखें।

उपज

कपास की देसी किस्म/ संकर, अमेरिकन किस्म/ संकर और बीटी संकर की सामान्य औसत उपज क्रमशः 1500 - 2000, 2000 - 2500 और 2500 - 3000 कि.ग्रा./हैक्टेयर होती है।





भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110012